वर्ष 3 (2019-20)
ISSN: 2394 6989

अक्षय खेती

कृषि जानकारी से परिपूर्ण, खेत–खलिहान को समर्पित पत्रिका

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर
आई.सी.ए.आर. परिसर, पोस्टः बिहार वेटनरी कॉलेज
पटना–800014, बिहार

भाकृअनुप
ICAR

अक्षय खेती

कृषि जानकारी से परिपूर्ण, खेत खलिहान को समर्पित पत्रिका

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
आई.सी.ए.आर. परिसर, पोस्ट : बिहार वेटनरी कॉलेज
पटना – 800014, बिहार

भा0 कृ0 अनु0 प0 का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
द्वारा प्रकाशित

अक्षय खेती

वर्ष 3 • अंक 1 • 2019–20

– :: प्रकाशक ::–
निदेशक
भा0 कृ0 अनु0 प0 का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

– :: संपादक मंडल ::–
शिवानी, प्रधान संपादक
रजनी कुमारी, संपादक
तारकेशवर कुमार, संपादक
कीर्ति सौरभ, संपादक
मनीषा टम्टा, संपादक
जसप्रीत सिंह, संपादक
उमेश कुमार मिश्र, संपादक

– :: हिन्दी समिति ::–
शिवानी, अध्यक्ष
रजनी कुमारी, सदस्य
तारकेशवर कुमार, सदस्य
कीर्ति सौरभ, सदस्य
मनीषा टम्टा, सदस्य
जसप्रीत सिंह, सदस्य
प्रभा कुमारी, सदस्य
उमेश कुमार मिश्र, सदस्य सचिव

नोट : अक्षय खेती में प्रकाशित लेखो में विचार, रेखांकन, छाया चित्र एवं अन्य सामग्री लेखकगण की है। इस संबंध में संपादक मंडल की सहमति आवश्यक नही है।

निदेशक की कलम से,

वर्तमान समय में बदलती हुई जलवायु परिस्थितियाँ कृषि को प्रभावित कर रही हैं तथा पूर्वी भारत की कृषि भी इससे अछूती नहीं है। यूं तो देश का पूर्वी क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण है परन्तु भौगोलिक, सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं के कारण कृषि उत्पादकता में पीछे है। ऐसे में कृषि से जुड़ी समस्याएं और विकराल प्रतीत होती हैं। अतः किसानों की खेती की समस्याओं का प्रत्युत्तर देने एवं तकनीकी रूप से सक्षम बनाने में भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना पिछले दो दशकों से अहम भूमिका निभा रहा है। समय–समय पर किसानों को कृषि से संबंधित विभिन्न पहलुओं जैसे वैज्ञानिक तरीकों से फसल उत्पादन, मत्स्य पालन, बागवानी, डेयरी प्रबंधन, बकरी एवं मुर्गी पालन आदि पर प्रशिक्षण के माध्यम से किसानों की आय दोगुनी करने के लक्ष्य में प्रयासरत है।

हिन्दी हमारे विचारों की अभिव्यक्ति का एक सरलतम स्रोत है और ऐसे में वैज्ञानिक ज्ञान को किसानों तक हिन्दी भाषा में पहुँचाने के लिए संस्थान की पत्रिका 'अक्षय खेती' का वर्तमान अंक इस दिशा में एक छोटा सा प्रयास है।

'अक्षय खेती'' के सफल प्रकाशन की कामना के साथ मैं यह भी आशा करता हूँ कि यह पत्रिका निश्चित ही किसानों व अन्य पाठकगणों के लिए भविष्य में भी इसी तरह तकनीकी और वैज्ञानिक ज्ञान को जनमानस तक पहुँचाने का कार्य करेगी। संपादक मंडल के समस्त सदस्यों एवं मूल्यवान लेखकगणों को मेरी हार्दिक शुभकामनाएं।

बी. पी. भट्ट

(निदेशक)

संपादकीय

कृषि हमारे देश की अर्थव्यवस्था का आधार है और राजभाषा हिन्दी हमारे गौरव और अस्मिता का प्रतीक है। किसानों के समग्र विकास के लिए तथा वर्ष 2022 तक उनकी आय दोगुनी करने के लिए सरकार द्वारा काई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। इसी दिशा में कृषि से संबंधित विभिन्न लेखों से सुसज्जित ''अक्षय खेती'' पत्रिका 2019–2020 का वर्तमान अंक कृषक भाईयों एवं बहनों को समर्पित है। राजभाषा हिन्दी, जो हमारी सम्पर्क भाषा भी है, को आगे बढ़ाने के प्रयास में हिन्दी में प्रकाशित इस पत्रिका द्वारा कृषि जगत को अवश्य लाभ प्राप्त होगा। इस अंक में बदलते मौसम का कृषि पर प्रभाव, कृषि में मशीनीकरण के साथ–साथ जैविक खेती, फसल उत्पादन, धान के खरपतवार एवं विभिन्न रोगों के प्रबंधन से संबंधित लेखों का समावेश है। इनके अलावा बकरी पालन, बत्तख पालन एवं मत्स्य पालन को भी अहम स्थान दिया गया है। छोटी–छोटी कविताओं के माध्यम से भी महत्वपूर्ण विषयों को भी इस पाठ्य सामग्री का हिस्सा बनाया गया है।

कुछ अपरिहार्य कारणवश इस पत्रिका का प्रकाशन विगत तीन वर्षों में नहीं हो पाया, जिसका हमें खेद है।

इस पत्रिका के प्रकाशन के लिए संस्थान के निदेशक महोदय को विशेष रूप से धन्यवाद, जिनके मार्गदर्शन से इस पत्रिका का प्रकाशन संभव हो सका। साथ ही लेख भेजने वाले विभिन्न संस्थानों, कार्यालयों के लेखकगण, हिन्दी समिति के सदस्यगण एवं संस्थान के अधिकारीगण एवं कर्मचारीगण को मेरा आभार। स्थानाभाव के कारण कुछ लेखों को स्थान नहीं मिल पाया, परन्तु अगले अंक में अवश्य ही प्रकाशित किया जाएगा।

हमें आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि आगे भी आप लोगों का स्नेह एवं साथ ''अक्षय खेती'' को मिलता रहेगा।

(शिवानी)

विषय सूची

1. बदलते मौसम में कृषि की स्थिति
मनीषा टम्टा, हिमानी बिष्ट, अभिषेक कुमार दूबे संतोष कुमार और राकेश कुमार

2. खरीफ मक्का की खेती एवं आर्थिक लाभ
बाल कृष्ण, बीरेंद्र सिंह, राकेश कुमार, प्रेम कु० सुन्दरम, मनीषा टम्टा, अभिषेक कुमार दूबे, हंसराज हंस एवं प्रकाश वर्मा

3. वर्षा आश्रित क्षेत्रों में कुल्थी की उन्नत खेती
इन्द्रजीत, दुष्यन्त कुमार राघव, धर्मजीत खेरवार, सन्नी कुमार, आशीष बालमुचू, शशि कान्त चौबे एवं ए.के. सिंह

4. गुणों की खान : नोनी
संजीव कुमार एवं शिवानी

5. धान क प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन
अभिषेक कुमार दूबे, मनीषा टम्टा, संतोष कुमार एवं राकेश कुमार

6. धान की फसल में होने वाले खरपतवारों की पहचान एवं नियंत्रण
दुष्यन्त कुमार राधव, इन्द्रजीत, धर्मजीत खेरवार, सन्नी कुमार, सन्नी आशीष बालमुचू, शशि कान्त चौबे एवं ए.के. सिंह

7. गाजर घास (पार्थीनियम हिस्टेरोपोरस) व इसका प्रबन्ध
मंधाता सिंह, रामकेवल एवं विश्वेन्दु द्विवेदी,

8. जैविक खेती
सुरजीत मंडल, अकरम अहमद, राकेश कुमार, प्रेम कुमार सुंदरम, संतोष कुमार

9. फसलों में खरपतवार का यांत्रिक एवम् जैविक विधियों द्वारा नियंत्रण
रवि कान्त चौबे[1], सुमित कुमार सिंह[1] डॉ0 अंजनी कुमार[2], डॉ0 उज्जवल कुमार[3],

10. जीरो टिलेज मशीन का बीज एवं उर्वरक दर निर्धारण
प्रेम कुमार सुन्दरम, बिकास सरकार, संजय कुमार पटेल, राकेश कुमार एवं पवन जीत

11. नैनोटेक्नोलॉजीः मृदा सुधार के क्षेत्र में आधुनिक प्रौद्योगिकी की प्रांसगिकता
कीर्ति सौरभ, राकेश कुमार, जे एस मिश्र, टी एल भूटिया, अनूप कुमार चौबे

12. हरी खाद– मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने का एक सस्ता विकल्प
मंधाता सिंह, विश्वेन्दु द्विवेदी, देवकरन, रामकेवल, हरी गोविंद, आरिफ परवेज एवं अफरोज सुल्तान

13. माइक्रोगीन्सः बेहतर स्वास्थ्य के लिए अधिक पोषण

तन्मय कुमार कोले, धीरज कुमार सिंह, अनिर्बन मुखर्जी, कुमारी शुभा, उज्ज्वल कुमार रतन कुमार, राजू. एन. सिंह और अभिषेक कुमार

14. बतख पालन– आजीविका का संभावित स्रोत
रीना कमल , पी.सी. चंद्रण, प्रदीप कुमार राय, रजनी कुमारी एव अमिताभ डे

15. बकरी पालन : सूखे में आजीविका का सहारा
एस.पी.एस. सोमवंशी वैज्ञानिक (पशुविज्ञान) एवं दुष्यन्त कुमार राघव

16. कार्प मछलियों के पालन एवं देखरेख के उचित तरीके
प्रकाश चन्द्र, सुरेंद्र कुमार अहिरवाल,

17. वर्मी कम्पोस्ट–एक गुणकारी खाद
शिवानी, संजीव कुमार, र्कीति सौरभ और शुभा कुमारी

18. कृषि में बायोडिग्रेडेबल नैनाक्ले पॉलीमर कम्पोजिट (एनसीपीसी) का प्रयोग
कीर्ति सौरभ, के. एम. मन्जाइअह, एस. सी. दता

19. वैज्ञानिक विधि द्वारा डेयरी पशुओं का प्रबंधन
रजनी कुमारी, शंकर दयाल, पी. सी. चन्द्रन, एस. के. बरारी, प्रदीप रे एवं रीना कमल

21. बेटियाँ
दुष्यन्त कुमार राघव

22. मेरी माँ
शरद कुमार द्विवेदी
वैज्ञानिक, फसल अनुसंधान प्रभाग

22. जूते का वियोग
कमल कुमार लाल

23. रेडियो
दुष्यन्त कुमार राघव

24. स्वर्ण श्रेया : सूखारोधी धान की उन्नत प्रजाति
संतोष कुमार, जे.एस.मिश्र, शरद कुमार द्विवेदी, अभिषेक कुमार दूबे एवं मनीषा टम्टा

25. हिंदी चेतना मास – 2019 : रिपोर्ट
शिवानी एवं उमेश कुमार मिश्र

''बदलते मौसम में कृषि की स्थिति ''

मनीषा टम्टा[1], हिमानी बिष्ट[2], अभिषक कुमार दूबे[1], संतोष कुमार[1] और राकेश कुमार[1]

[1]आई०सी०ए०आर० का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना 800014

[2]आई०सी०ए०आर० भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012

भारत की अर्थव्यवस्था अब भी कृषि पर निर्भर करती है, और कृषि निर्भर करती है मौसम पर। देश की 54.6 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अपनी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर करती है। कृषि कार्य 60–65 प्रतिशत तक मौसम पर ही आधारित है। देश में अब भी कृषि 58 प्रतिशत तक रोजगार प्रदान करती है, और देश की जी०डी०पी० में 17.4 प्रतिशत की भागीदारी रखती है। इन्ही कारणों के आधार पर भारत को एक कृषि प्रधान देश कहा जाता है और देश में अब भी कृषि मौसम पर ही आधारित है। अगर कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है तो वही मौसम भी इसका एक अभिन्न अंग है। खेती करने के मुख्यतः तीन मौसम खरीफ, रबी और जायद हैं, जिसमें सबसे ज्यादा क्षेत्रफल में फसलें खरीफ के समय में उगाई जाती हैं। प्रत्येक मौसम के अनुसार उगाई जाने वाली फसलों की आवश्यकताएं और मौसम पर निर्भरता अलग होती है। खरीफ के समय में उगाई जाने वाली मुख्य फसलें जैसे धान, मक्का, दलहनी फसलों और मौसमी बेल वाली सब्जियों को अधिक तापमान और जल की आवश्यकता होती है साथ ही इस मौसम में हवा में अधिक नमी (आद्रता) भी होती है। ये परिस्थितियाँ केवल फसल ही नहीं अपितु उनसे जुड़ी बिमारियों और कीटों के लिए भी अनुकूल होती हैं। रबी के मौसम में उगाई जाने वाली मुख्य फसलें जैसे गेहूँ, तथा सब्जियों को कम तापमान की आवश्यकता होती है। इस मौसम में कम वषा होतो है तथा वातावरण में उचित नमी होती है। जायद के मौसम में अत्यधिक तापमान और शुष्क वायु तथा पानी की कमी की वजह से बहुत कम फसलें उगाई जाती है जैसे कि म्ग, ताकि कम पानी की उपलब्धता में भी फसलों का उत्पादन किया जा सके।

मौसम में बदलाव का आकलन : जल एक बहुमूल्य निधि है फिर चाहे वह भू–जल हा या फिर वर्षा जल। कृषि हेतु जल प्रबंधन बहुत महत्व रखता है। पुराने समय से ही कृषि में वर्षा जल को खेती करने का मुख्य श्रोत माना जाता रहा है। जनसंख्या में लगातार हो रही वृद्धि के कारण भू–जल पर निर्भरता बहुत बढ़ गई है और भू–जल का स्तर प्रति वष गिरता जा रहा है। जिस कारण कृषि हेतु इसका उपयोग बहुत की महगा हो गया है और पुनः वर्षा जल पर आ्श्रय बढ़ता जा रहा है। परन्तु प्रति वष वर्षा जल का भी मात्रात्मक और भागोलिक रूप से आवंटन बदल रहा है। जिस वजह से कृषि उत्पादन प्रभावित हो रहा है। हमारे देश की वाषिक सामान्य वर्षा 1190 मि०मी० है, जिसका लगभग 75 प्रतिशत वर्षा मानसून वर्षा के रूप

में जून माह से सितम्बर माह तक होती है। भारत में मानसून में सामान्य वषा 890 मि०मी० है। भारत में ''दक्षिण–पश्चिम मानसून'' बरसात का महत्व अधिक है क्योंकि ज्यादातर भौगोलिक क्षेत्रों में वर्षा इसी दौरान होती है और फसलों का प्रदर्शन भी इस पर ज्यादा निर्भर करता है। इसके अलावा देश में 'उत्तर–पूर्व मानसून' के तहत भी कुछ वर्षा प्राप्त होती है परन्तु यह बहुत हो कम क्षेत्रों तक प्रभावी रहता है। मानसूनी वर्षा जल में बदलाव की वजह से लगातार फसलों की संवेदनशीलता बढ़ रही है और खाद्य सुरक्षा भी प्रभावित हो रही है। पिछले कुछ वर्षों के रिकार्ड **(तालिका–1)**से यह पता चलता है कि भारत में मानसून की वर्षा प्रतिवर्ष सामान्य से कम हो रही है। केवल कुछ वर्षा को छोड़ दिया जाए (जब वर्षा सामान्य या सामान्य से अधिक हुई थी) तो इसका ग्राफ लगातार गिरता ही जा रहा है। बेमौसम बरसात का होना या फिर असमय होना, अनिश्चितता, कम समय में बहुत अधिक मात्रा में वर्षा होना, बहुत कम दिनों के लिए वर्षा का होना जैसी समस्याएँ बढ़ रही हैं। इन सभी अनियमितताओं के कारण केवल मानव स्वास्थ्य ही नही अपितु पेड़–पौधों और पशु–पक्षियों को भी जूझना पड़ रहा है। भारत में मानसून के आगमन की सामान्य तिथि 1 जून मानी गई है परन्तु यह भी अधिकतर वर्षों में **(तालिका–2)**लगभग 1 सप्ताह की देरी से ही आया है। तापमान का आकलन **(तालिका–3)**किया जाए तो न्यूनतम तापमान में अधिकतम तापमान की अपेक्षा अधिक बदलाव आया है। 20वी शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों की तुलना में अब तक भारत के वार्षिक तापमान में लगभग 1 डि०से० की वृद्धि हो चुकी है जिसमें तीन बार 21वी सदी में वर्ष 2006, 2009, और 2010 में तापमान 25 डि०से० से अधिक रहा **(तालिका–4)**। सर्दियों के मौसम में भी तापमान में लगातार वृद्धि दर्ज की जा रही हैं। देश के लगभग ज्यादातर हिस्सों में जायद के मौसम में तापमान में रिकार्ड वृद्धि के आकड़े देखने को मिल रहे हैं। शुष्क हवाओ के चलने की वजह से इस दौरान देश में ''लू'' लगने से स्वास्थ्य बिगड़ने के भी तथ्य देखे जा सकते हैं। पिछले कुछ वषा से ''हीट वेव''' की घटनाओं में वृद्धि हुई है। जिस वजह से मनुष्य और मवेशियों दोनों की जान का खतरा बढ़ रहा है। देश के कई क्षेत्रों में जो संवेदनशील ह, मौसम में बदलाव की घटनाओं (बादल फटना,चक्रवात, आँधी–तूफान, ओलावृष्टि, असमय बर्फबारी, कम या अधिक वर्षा होना) की आवृत्ति में भी बढ़ोत्तरी हो रही है।

कृषि पर प्रभावः कृषि की मौसम पर निर्भरता इसे मौसम में हो रहे बदलावों के कारण और भी अधिक संवदनशील बना रही है और किसान अब इसे एक घाटे का सौदा के रूप में देखने लगे हैं। पिछले 10 वर्षो में इसका परिणाम अनाज उत्पादन में हो रहे परिवर्तन के रूप में देखा जा सकता **(तालिका–5)**है। खरीफ की मुख्य फसल ''धान'' की जल की आवश्यकता अन्य फसलों की तुलना में अधिक होती है। मानसून के देरी से सक्रिय होने की वजह से किसानों को धान की पौध की रोपाई हेतु भू–जल को पंपिग के माध्यम से प्रयोग करना पड़ता है। जिस कारण फसल उगाने का खर्च बिजली अथवा डीजल पर होने वाले खर्च की वजह से बढ़ जाता है। असमय बरसात भी फसल को बहुत नुकसान पहुँचाती है। कम वर्षों होने से

सुखाड़ की स्थिति फसल के विकास में बाधा डालती ह। बाढ़ की स्थिति में सही किस्मों के चुनाव न किये जाने की वजह से भी फसल नष्ट हो जाती है। रबी के मौसम में उगाई जाने वाली प्रम़ख फसल गेहूँ, मसूर और हरी पत्तेदार सब्जियाँ हैं। इस मौसम की फसलों को शुरूआती दिनों में कम तापमान तथा अंतिम के दिनों में पकने हेतु तुलनात्मक रूप से अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। परन्तु तापमान में हो रही वृद्धि के कारण पौधों का विकास बाधित होता है और परिपक्वन के समय तापमान की यह अधिकता फसलों का जल्दी पका देती है जिसे ''फोर्सड मैच्योरिटी'' भी कहा जाता हैं। यह फसलों को जीवन चक्र (समय) को कम कर देती है जिस कारण दाना कम बनना या न बन पाने जैसी समस्या के चलते फसल उत्पादन घट जाता हैं। वही जायद के मौसम में अत्यधिक तापमान और वषा जल की कमी के चलते बहुत कम क्षेत्रफल म फसलों की बुवाई की जाती है क्योंकि यह फसलें मुख्यतः सिचाई के जल पर निर्भर होती हैं।

संभावित विकल्पः इन सभी समस्याओं के चलते फसलों के वैज्ञानिक रूप से खेती करने की महत्ता बढ़ गई है ताकि आने वाले समय में लगातार बढ़ रही जनसंख्या की खाद्य आपूर्ति हेतु हमारे देश को पुनः अन्य देशों पर आश्रित न होना पड़े। प्राकृतिक घटनाओं पर तो मनुष्य का कोई नियंत्रण नहीं परन्तु उससे होने वाले नुकसान को काफी हद तक कम किया जा सकता हैं अगर समय से तैयारी कर ली जाय तो। इसके लिए सर्वप्रथम सभावित विकल्पों की जानकारी होना तथा उनकी उपलब्धता दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। विकल्पों का चुनाव कृषकों की रूचि तथा तकनीकियों की उपलब्धता पर अवश्य निर्भर कर सकता है परन्तु सर्वप्रथम उनका ज्ञान होना आवश्यक है जैसे कि–

1. वैज्ञानिक विधि से खेती करना।
2. फसलों की उन्नत किस्मों का चयन करना।
3. वषा में कमी के पूर्वानुमान की स्थिति में सूखा सहिष्णु प्रजातियों का चयन करना।
4. उचित जल प्रबंधन बनाये रखना।
5. खाद, कीटनाशी, खरपतवार नियंत्रक और फॅफूदनाशी दवाओं का खेत में आवश्यकता से अधिक प्रयोग न करना।
6. ''क्लाइमेट स्मार्ट कृषि'' के तहत आने वालो तकनीकियों का चयन करना जैसे लेजर भूमि समतलीकरण, जीरो टिलेज द्धारा बुवाई, रेज्ड़ बेड़ प्लांटिग, धान की सीधी बुवाई, अटरनेट वेटिंग एंड ड्राइंग पद्धति का चुनाव, ग्रीन लीफ चार्ट का प्रयोग, श्री –विधि द्धारा धान की बुवाई, हरी खाद का प्रयोग करना इत्यादि।
7. समय–समय पर मौसम विभाग द्धारा दिये जाने वाले पर्वानुमान और कृषि परामर्श के अनुसार दैनिक कृषि कार्य करना।
8. फसलों का बीमा करना ताकि फसल नुकसान होने स्थिति में भरपाई की जा सके।

9. सरकार द्वारा मिलने वाले कृषि अनुदान तथा बाजार भाव की सूचना रखना ताकि ज्ञान के अभाव के चलते नुकसान न हो।

तालिका 1: भारत की वार्षिक एंव मानसून वर्षा का रिकार्ड

क्र० सं०	वर्ष	**मानसून** वर्षा **(मि॰मी॰)**	**सामान्य से झुकाव (प्रतिशत)**	वार्षिक वर्षा **(मि॰मी॰)**	**सामान्य से झुकाव (प्रतिशत)**
1	2000	798.1	−10	1035.4	−13
2	2001	818.8	−8	1100.7	−7
3	2002	700.5	−21	935.9	−21
4	2003	902.9	2	1187.3	0
5	2004	807.1	−9	1106.5	−7
6	2005	874.3	−1	1208.3	2
7	2006	889.3	0	1161.6	−2
8	2007	943.0	6	1179.3	−1
9	2008	877.8	−1	118.0	−6
10	2009	698.3	−1	953.7	−20
11	2010	911.1	−21	1215.5	2
12	2011	901.3	3	1116.3	−6
13	2012	823.9	2	1054.7	−11
14	2013	937.4	−7	1242.6	5
15	2014	781.7	−12	1044.7	−12
16	2015	765.8	−14	1085.0	−9
17	2016	864.4	−3	1083.2	−9
18	2017	845.9	−5	1127.0	−5

तालिका 2: मानसून के आने तथा जाने की तिथि

क्र० सं०	वर्ष	**मानसून के आने की तिथि**	**मानसून के वापिस जाने की तिथि**
सामान्य तिथि		1 जून	1 सितम्बर
1	2006	7 जून	21 सितम्बर
2	2007	26 मई	30 सितम्बर

3	2008	28 मई	29 सितम्बर
4	2009	31 मई	25 सितम्बर
5	2010	23 मई	27 सितम्बर
6	2011	29 मई	23 सितम्बर
7	2012	5 जून	24 सितम्बर
8	2013	1 जून	9 सितम्बर
9	2014	6 जून	23 सितम्बर
10	2015	5 जून	4 सितम्बर
11	2016	8 जून	15 सितम्बर
12	2017	30 मई	27 सितम्बर
13	2018	29 मई	29 सितम्बर

तालिका 3: प्रत्येक 20 वर्ष में तापमान में बदलाव

क्र० सं०	**वर्श**	**वार्षिक सामान्य तापमान(डि०से०)**
1	1905	23.71
2	1925	23.95
3	1945	23.93
4	1965	24.07
5	1985	24.45
6	2005	24.58
7	2015	24.91

तलिका 4: 21वीं शताब्दी में प्रत्येक वर्ष तापमान में बदलाव

क्र० सं०	वर्ष	**वार्षिक तापमान (डि०से०)**	**न्यूनतम तापमान (डि०से०)**	**अधिकतम तापमान (डि०से०)**
1	2000	24.6	19.48	29.75
2	2001	24.72	19.49	29.99
3	2002	25.0	19.78	30.23
4	2003	24.72	19.7	29.75
5	2004	24.74	19.69	29.79

6	2005	24.58	19.58	29.6
7	2006	25.06	20.07	30.06
8	2007	24.77	19.69	29.84
9	2008	24.61	19.60	29.64
10	2009	25.11	19.94	30.3
11	2010	25.13	20.15	30.13
12	2011	24.66	19.58	29.82
13	2012	24.69	19.54	29.81
14	2013	24.82	19.83	29.81
15	2014	24.75	19.77	29.72

तालिका 5: वार्षिक फसल उत्पादन

क्र० सं०	वर्ष	**कुल अनाज उत्पादन (मिलियन टन)**	**धान (मिलियन टन)**	**गेहूं (मिलियन टन)**
1	2005—06	208.60	91.79	69.35
2	2006—07	217.20	93.96	75.81
3	2007—08	230.78	96.69	78.57
4	2008—09	234.47	99.18	80.68
5	2009—10	218.11	89.09	80.80
6	2010—11	244.49	95.98	86.87
7	2011—12	259.29	10.30	94.88
8	2012—13	257.13	10.24	93.57
9	2013—14	265.04	106.65	95.85
10	2014—15	252.02	105.48	86.53
11	2015—16	251.57	104.41	92.29
12	2016—17	275.68	110.15	98.53

खरीफ मक्का की खेती एवं आर्थिक लाभ

बाल कृष्ण[1], बीरेंद्र सिंह[2], राकेश कुमार[3*], प्रेम कु० सुन्दरम[3], मनीषा टम्टा[3], अभिषेक कुमार दूबे[3], हंसराज हंस[4] एवं प्रकाश वर्मा[5]

[1]पी.एच.डी. शोध छात्र, बिहार कृषि विश्वविद्यालय,सबौर, भागलपुर–813210, बिहार

[2]वैज्ञानिक, पादप प्रजनन और आनुवंशिकी विभाग, बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर, 813210

[3]वैज्ञानिक, भा.कृ.अन.प. का पूर्वी अनु. परिसर, पटना–800014,

[4]एस. आर. एफ., भा. कृ. अनृ. प. का पूर्वी अनु. परिसर, पटना–800014

[5]कृषि वित्त अधिकारी, सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया, संगरूर–148001

*प्रेषक ई मेल–rakeshbhu08@gmail.com

मक्का बिहार के प्रमुख फसल में से एक है और इसका प्रमुख उत्पादक राज्य है। इसकी खेतो हमारे यहाँ खरीफ, रबी एवं गरम तीनो मौसम में की जाती है। ये फसल मुख्यतः बिहार के पूर्वी चंपारण, सारण, मुजफ्फरपुर, वैशाली, बेगुसराय, खगड़िया, भागलपुर एवं सिवान जिलों में खरीफ की अनाज एवं औद्योगिक फसल के रूप में किया जाता है। बिहार में खरीफ मक्का की खेती लगभग 227.4 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में को जाती है जिससे उत्पादन लगभग 482.6 हजार टन होता है। उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन के आधार पर मक्का दो प्रकार के होते है–

(1) साधारण मक्का–इस मक्का में एमिनो एसिड (लायसिन एवं ट्रिप्टोफेन) की मात्रा बहुत कम पाई जाती है साथ ही दूसरे एमिनो एसिड का भी अनुपात चावल और गेहूं के तुलना में बहुत कम होता है।

(2) उच्च गुणवत्ता वाला मक्का (QPM)–इस मक्का का उपज साधारण मक्का के बराबर ही होता है लकिन इसमें एमिनो एसिड (लायसिन एवं ट्रिप्टोफेन) की मात्रा अधिक होता है साथ ही दूसरे एमिनो एसिड का अनुपात भी सही होती है जिसके कारण इस मक्का की गुणवत्ता बढ़ जाता है जो आदमी और जानवरो में होने वाले कुपोषण की बीमारी को कम करती है।

मक्का से स्वास्थ्य लाभः मक्का के दाने में मौजूद पोषक तत्व तालिका 1 में प्रस्तुत की गई है। मक्का से विभिन्न स्वास्थ्य लाभ इस प्रकार हैं**:-**

- ✓ मक्का में बी–कॉम्प्लेक्स विटामिन, त्वचा, बाल, दिल, मस्तिष्क, और उचित पाचन के लिए अच्छे होते ह।
- ✓ बीटा–कैरोटीन के साथ विटामिन-ए, सी, एवं के की उपस्थिति सेलेनियम थायरॉयड ग्रंथि और शरीर क रक्षा प्रणाली को सुधार करने में मदद करता है।
- ✓ भारत, चीन, स्पेन, फ्रांस और ग्रीस जैसे दुनिया के कई देशों में इसका उपयोग गुर्दे की पथरी, मूत्र पथ के संक्रमण, पीलिया, जैसे बीमारी के इलाज करने के लिए भी किया जाता है।
- ✓ मक्के में आवश्यक फैटी एसिड, विशेष रूप से लिनोलिक एसिड पाया जाता है जो कि रक्तचाप को समांन्य बनाए रखने, रक्त कोलेस्ट्रॉल के स्तर को नियंत्रित करने और हृदय संबंधी विकृतियों को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

तालिका 1 प्रति 100 ग्राम मक्का के दानों में पाए जाने वाले पोषक तत्व की मात्रा

पोषक तत्व	**मात्रा**
कार्बोहायड्रेट	71.88 ग्राम
प्रोटीन	8.84 ग्राम
वसा	4.57 ग्राम
रेशा	2.15 ग्राम
फॉस्फोरस	348 एम. जी.
सोडियम	15.9 एम. जी.
सल्फर	114 एम. जी.
राइबोफ्लेविन	0.10 एम. जी.
एमिनो एसिड्स	1.78 एम. जी.
कैल्शियम	10 एम. जी.
आयरन	2.3 एम. जी.
पोटैशियम	286 एम. जी.
थायमिन	0.42 एम. जी.
विटामिन सी	0.12 एम. जी.
मैग्नीशियम	139 एम. जी.

खेत का चुनाव और खेत की तैयारीः खेती के लिए चयनित भूमि खरपतवारों और पहले से उगाई गई फसल के अवशेषों से मुक्त होनी चाहिए। 10 से 15 सें. मी. की गहराई तक जुताई करना चाहिए जिससे खरपतवार नष्ट हो जाए। इसके लिए खेत का 3 से 4 जुताई देशी हल या कल्टीवेटर से करना चाहिए। इसके बाद पाटा के द्वारा खेत को समतल करे। आखरी जुताई के समय में अच्छी तरह से गाय के गोबर 10-15 टन प्रति हेक्टेयर भूमि में मिला देना चाहिए, साथ ही खेत में जैविक खाद एजोस्पिरिलम के 10 पैकेट भी खेत में डाले इससे रासायनिक खाद पर निभरता कम होती है।

बुवाई का समयः खरीफ मौसम में मॉनसून की शुरुआत के साथ मई से जून के अंत तक मक्का को बो देना चाहिए।

खरीफ मक्का के प्रभेदः

प्रभेद	**पकने की अवधि (दिनों में)**	**उपज (क्विंटल प्रति हेक्टेयर)**	**अभियुक्ति**
संकर प्रभेद			
शक्तिमान– 1	110-115	35-40	सफेद
शक्तिमान–2	110-115	40-45	सफेद
पूसा अगात संकर मक्का –3	85-90	40-45	पीला
डी. एच. एम. –117	100-105	50-55	नारंगी पीला

डी. एच. एम. –1	72-75	55-60	पीला
संकुल प्रभेद			
सुआन	85-90	40-45	पीला
देवकी	100-110	45-50	सफेद

बुवाई की विधिः बुवाई कतारों में करना चाहिए इसके लिए पौधों से पौधों की दुरी 20 सेमी. और कतार से कतार की दूरी 60 सेमी. होनी चाहिए। बीज को 3-4 सेमी की गहराई पर बोना चाहिए। बीज की बुवाई ट्रैक्टर द्वारा तैयार की गई रिजर सीड ड्रिल (Ridger seed dril) या छित्वा विधि से या डिब्बलिङ्ग सीड्स की सहायता से की जा सकती है।

बीज की मात्राः 20 के.जी. प्रति हेक्टेयर भूमि होना चाहिए।

बीजोपचार की विधिः मृदा से लगने वाले रोगों और कीट से बीजों को बचाने के लिए बीजोपचार आवश्यक है। बीज को दोउनी मिल्डू से बचाने के लिए बीज का कार्बेन्डाजिम या थायरम 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से उपचारित करना चाहिए। रासायनिक उपचार के बाद बीज को एजोस्पिरिलम 600 ग्राम से उपचारित करना चाहिए। बीजोपचार उपचार के बाद 15-20 मिनट के लिए बीज को छाया में सुखाए।

उर्वरक प्रबंधनः

पोषक तत्व की मात्रा (किलो प्रति हेक्टेयर)			**उर्वरक की मात्रा (किलो प्रति हेक्टेयर)**			
नाइट्रोजन	फॉस्फोरस	पोटाश	यूरिया	सिंगल सुपर फॉस्फेट	पोटाश	जिंक
100	60	40	215	375	66	20-25

मिट्टी परीक्षण के परिणाम के आधार पर उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए। बुवाई के समय सिंगल सुपर फॉस्फेट और पोटाश की पूरी मात्रा एव यूरिया का एक तिहाई हिस्सा खेत में डालना चाहिए। यूरिया की बची हुई मात्रा को घुटने की ऊँचाई की अवस्था पर और नर फूल (झंडा) आने से पूर्व की अवस्था में खेत में उपरिनिवेशन करें। आजकल जिंक तत्व की कमी मक्का की फसल में आम परेशानी बन गयी है। इस परेशानी को दूर करने के लिए, जिंक सल्फेट 20-25 किलो प्रति हेक्टेयर को बेसल खुराक के रूप में डालना चाहिए।

नाइट्रोजन का पहला उपरिनिवेशन

खरपतवार नियंत्रणः खरपतवार मक्का की खेती में एक गंभीर समस्या है, विशेष रूप से खरीफ के मौसम के दौरान खरपतवार पोषक तत्वों के लिए मक्का के साथ प्रतिस्पर्धा करते हैं और 45 प्रतिशत तक उपज नुकसान का कारण बनते हैं। इसलिए, अधिक उपज प्राप्त करने के लिए समय पर खरपतवार प्रबंधन करना चाहिए। मक्का की फसल में कम से कम एक या दो बार हाथ से निराई करनो चाहिए। पहली निराई, बुवाई के 20-25 दिन के बाद और दूसरी निराई बुआई के 40-45 दिन बाद करनी चाहिए। यदि खरपतवार का संक्रमण अधिक हो, तो एट्राजिन 500 ग्राम प्रति 200 लीटर पानी के साथ छिड़काव करना चाहिए। जिस खेत में तृणनाशक दवा का छिड़काव नहीं किया गया हो उस खेत में मक्का के कतारों के बीच खुरपी से निडोनी करें तथा नाइट्रोजन का प्रथम उपरिनिवेशन कर मिट्टी चढ़ा द।

पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का तरीका

खरपतवार नियंत्रण के कोनो वीडर का प्रयोग

खुरपी से निराई

सिंचाई प्रबंधनः बुवाई के तुरंत बाद सिंचाई करना चाहिए। बरसात के मासम में यदि बारिश संतोषजनक हो तो इसकी आवश्यकता नहीं है। फसल के शुरुआती चरण में पानी के ठहराव से बचे और अच्छी जल निकासी का उपाय करना चाहिए। प्रारंभिक अवस्था के दौरान फसल को कम सिंचाई की आवश्यकता होती है, बुवाई के 20 से 30 दिन बाद एक सप्ताह में एक बार सिंचाई की आवश्यकता होती है। सिंचाई के लिए अंकुरण, पौधे जब घुटने की ऊँचाई की अवस्था के हो और मोचा आने से दाना निकलने तक खेत में पर्याप्त नमी रखना अत्यंत

आवश्यक है क्याकि ये अवस्था सबसे संवदनशील अवस्था है। इस अवस्था पर पानी की कमी से उपज में भारी नुकसान होता है। अगर किसान के खेत में पानी की कमी हो तो वो ऐसे स्थिति में एक नाली छोड़ कर दूसरी नालियों (Alternate furrow) में सिंचाई करना चाहिए इससे पानी की भी बचत होती है।

घुटने की ऊँचाई की अवस्था सिंचाई

बिरला करना (थिन्निंग): अगर खेतो में पौधों की संख्या सिफारिश की गयी पौधों की संख्या से अधिक हो तो बुवाई के बाद अनावश्यक पौधा को निकाल देना चाहिए।

खरीफ मक्का में अन्तःफसलीकरण :आमतौर पर खरीफ मक्का की बिजाई 60 सें. मी. कतार के फैसले पर की जाती है इसलिए मक्का के दो कतारों के बाद एक कतार दलहन वाली फसल जैसे मक्का+उड़द या मूंग, मक्का+अरहर एवं मक्का+लोबिया लिया जा सकता है। इससे एक तो मक्का की पैदावार में कमी नहीं आती है और साथी ही दलहन फसल का अतिरिक्त मुनाफा किसान को मिल जाता है और दलहन फसल के कारण जमीन की उर्वरा शक्ति भी बढ़ जाता है।

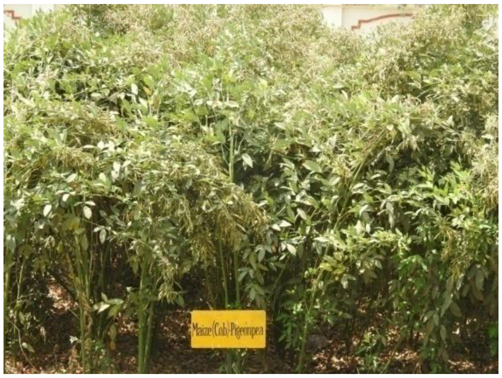

मक्का-अरहर **फसल** चक

कीट की सामूहिक रोकथाम: तना छेदक कीट से फसल को बचने के लिए खेत को गर्मियों में गहरी जुताई करनी चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए 200 ग्राम कार्बरिल को 200 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ पहला छिड़काव फसल बुवाई के 10 दिन बाद करना चाहिए

और दूसरा छिड़काव फसल बुवाई के 20 दिन बाद 300 ग्राम कार्बरिल को 300 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ और तीसरा छिड़काव फसल उगने के 30 दिन बाद 400 ग्राम कार्बरिल को 400 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ करना चाहिए। किसान इस बात का ध्यान रखे कि इस दवाई का छिड़काव गोभ में ही करे। कातरा (बालो वाली सुन्डिया) कीट से फसल को बचाने क लिए पत्तियों को सुन्डिया सहित नष्ट करना चाहिए। कातरा के अंडो और सुन्डिया को जला कर या कुचल कर मार दें। इस सुन्डिया की रोकथाम के लिए 200 मि. ली. मोनोक्रोटोफॉस या 500 मि. ली. क्वीनलफॉस 250 लीटर पानी प्रति एकड़ में मिला कर छिड़काव करना चाहिए। चूरड़ा (थ्रिप्स), सलेटी भुंडी(ग्रे वीविल) और हरा तेला (लीफ हॉपर) की रोकथाम के लिए 250 मि. ली. मेलाथ्यान को 250 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करना चाहिए साथ ही किसान को इस बात का खास ध्यान रखना चाहिए कि जब भी कार्बरिल और मेलाथ्यान दवाई का फसल पर प्रयोग करे तो उसके एक सप्ताह बाद एवं दसरी दवाओं के प्रयोग तीन सप्ताह बाद ही पशुओं को ये फसल चारे के रूप में खिलाए।

रोग की सामूहिक रोकथामः

- सिफारिश की गई बीज का ही प्रयोग करना चाहिए।
- तना गलन की बीमारी होने पर ब्लीचिंग पाउडर 4 किलोग्राम 1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से पूरे पौधों में छिड़काव करना चाहिए।
- हरदा रोग की रोकथाम के लिए मैंकोजेब 2.5 किलोग्राम 1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- जब फसल 5-7 सप्ताह की हो जाए तो जिस पोधो म बीमारी लग गई है उस पौधों को उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए।

कटाईःखरीफ मौसम में मोचा निकलने से 40–45 दिनों के बाद भुट्टे परिपक्व हो जाते है। मक्का की कटाई का सबसे उपयुक्त समय तब होता है जब डंठल सूख जाते ह और अनाज की नमी लगभग 20 प्रतिशत हो जाती है। मक्का की कटाई के लिए भुट्टा को पहले तोड़ ले और उसके बाद सूखा लें और बाकी बचे पौधों को पशुओं को चारे के रूप में खिलाया जा सकता है।

उपजः औसतन उपज 45 से 50 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होती है।

गहाई (थ्रेशिंग)ः भुट्टो की थ्रेशिंगए मक्का छिलने वाली मशीन से किसान कर सकते है।

अधिक उपज के लिए किसान भाइयों को सलाह

- ✓ सही समय पर खरपतवार का नियंत्रण करें
- ✓ दूधिया अवस्था में सिचाई अवश्य करें
- ✓ सिफारिश की गई बीज एवं बीज दर का ही प्रयोग करें
- ✓ मिट्टी परीक्षण के परिणाम के आधार पर ही उर्वरक का प्रयोग करें
- ✓ सिफारिश की गई बीज दर का ही प्रयोग करें
- ✓ हाइब्रिड बीज प्रति वर्ष नया खरीदे
- ✓ मक्का छेदक कीट का सही समय पर नियंत्रण करें

खरीफ मक्का से आर्थिक लाभ:एक एकड़ खेत में अनुमानित प्रारंभिक निवेश में भूमि की तैयारी, बीज, मजदूरी और उर्वरकों की खरीद शामिल है। सिंचाई सुविधा की स्थापना एक और स्टार्ट–अप लागत है। एक मौसम में लगभग 45-50 क्विटल प्रति एकड़ और साथ ही 80-90 क्विंटल प्रति एकड पशु चारे के अतिरिक्त लाभ के साथ उपज देती है। इसकी खेती में एक एकड़ में लगभग 20000 रूपया खर्च लगता है मक्का और पशु चारा मिला कर 80000 रूपया शुद्ध लाभ किसान भाई आमदनी कर सकते है। किसान भाई और अधिक लाभ के लिए अन्तःवर्ती फसली खेती कर सकते है।

समापन टिप्पणी: भारत में मक्का की खेती को बढ़ावा देने के लिए काफी गुंजाइश है। मक्का उद्योग एवं उच्च आय के अवसर प्रदान करता है, ग्रामीण गरीबों के लिए रोजगार पैदा करता है और निर्यात की सभावनाएं पैदा करता है। ये आजकल व्यावसायिक फसल का रूप ले रही है। इस प्रकार, स्थानीय अर्थव्यवस्था और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में मदद करता है इन लाभों का दोहन करने के लिए, राष्ट्रीय स्तर पर अनुसंधान और विकास सहायता और उचित नीतियों की आवश्यकता होती है। ये फसल कम लागत में अधिक लाभ देने वाली फसल है जो की खाद्य सुरक्षा में अहम भूमिका निभा सकती है। इसलिए, मक्का उद्योग को बढ़ावा देने के लिए, सूचना और जर्मप्लाज्म के आदान–प्रदान के लिए क्षेत्रीय सहयोग, चयनित संकरों और किस्मों का क्षेत्रीय परीक्षण, संयुक्त बैठके और दौरे, मानव संसाधन विकास, अनुसंधान और विकास के लिए सहयोगात्मक प्रयास और नीति निर्माताओं के आगमन के लिए संवेदीकरण उपयुक्त मक्का उत्पादन और प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी को अपनाना अत्यधिक वांछनीय होगा।

वर्षा आश्रित क्षेत्रों में कुल्थी की उन्नत खेती

इन्द्रजीत, दुष्यन्त कुमार राघव, धर्मजीत खेरवार, सन्नी कुमार, आशीष बालमुचू, शशि कान्त चौबे एवं ए.के. सिंह*

कृषि विज्ञान केन्द्र, रामगढ़, भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनु. परिसर, पटना

***प्रधान, भा.कृ.अनु,प,का पूर्वी अनु, परिसर, शोध केन्द्र, राँची**

कुल्थी दलहनी फसलों में एक महत्वपूर्ण फसल मानी जाती है। प्राचीनकाल से भारत के वर्षा आश्रित क्षत्रों में होने वाली दलहनी फसलों में कुल्थी का अलग ही स्थान है। इसका इस्तेमाल दाल के अलावा 'रसम' बनाने में तथा मवेशियों का चारा में भी होता है। इसके अलावा कुल्थो को हरी खाद के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। शुष्क क्षेत्रों में इसे खरीफ फसल के रूप में लगाया जाता है, सूखा प्रतिरोधी होने के कारण इसमें पानी की आवश्यकता भी कम पड़ती है। कम अवधि में तैयार होने के कारण इसे फसल चक्र में भी असानो से सम्मिलित किया जा सकता है। पोषणमान की दष्टि से इसके 100 ग्राम दाने में

22ग्राम प्रोटीन, 57 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 5 ग्राम रेशा, 3 ग्राम खनिज, 287 मि. ग्राम कैल्सियम, 311 मि.ग्रा. फास्फोरस तथा 7 मि.ग्रा. आयरन पाया जाता है। इसके कई स्वास्थ्य लाभ भी हैं। इसमें पोषण के साथ–साथ आयरन की अधिकता के कारण यह अनाज अतिरिक्त वसा व वजन कम करने में मदद करता है। इसमें अच्छी मात्रा में विटामिन बी–काम्पलेक्स और प्रोटीन होता है जिससे माहवारी के दिनों में मदद मिलती है, परन्तु गर्भवती महिलाओं को इसके इस्तेमाल से बचना चाहिए। यह आर्थराइटिस से बचाता और इसका इलाज भी करता है। अधिक मात्रा में मौजूद डाइट फाइबर (रेशे) रक्तचाप और रक्त में ग्लूकोज के स्तर को संतुलित रखता है। कुल्थी के पौधा में एंटी ऑक्सीडेंट गुण पाए जाते हैं। कुल्थी की दाल कमजोर लिवर, स्फलीन, किडनी एवं गॉल–ब्लाडर की पथरी के मरीजों के लिए लाभकारी है। कुल्थी की दाल इस्तेमाल करने पर कीड़ों से होने वाले इन्फेक्शन और पेट की परेशानियों जैसे एसीडिटी आदि दूर रहती है। कुल्थी की महत्ता इस बात से समझी जा सकती है की

इसमें पोषक तत्वों के अलावा औषधीय गुण भी विद्यमान है। वर्षा आश्रित पठारी क्षेत्रों में झारखण्ड, छत्तीसगढ़, उड़िसा में दलहनी फसलों में खरीफ के मौसम में अरहर के बाद दूसरा स्थान है। देर से बुवाई के कारण इसकी खेती आकस्मिक फसलों के रूप में की जाती है। अभी इन राज्यों में कुल्थी की उपज 4.5–5.5 क्विन्टल /हे. दर्ज की गई है। भारतीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अंतर्गत समूह में अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन के द्वारा कृषि विज्ञान केन्द्र, रामगढ़ द्वारा झारखण्ड राज्य के रामगढ़ जिले के विभिन्न गॉवों में कुल्थी के खेती वैज्ञानिक तरीके से करने पर 8 क्वि./हे. उपज प्राप्त की जा चुकी है।

भूमि का चयन एवं खेत की तैयारीः–

कुल्थी की खेती के लिए टाढ़ जमीन जहा पानी नही जमता हो उपयुक्त होती है जो पठारी क्षेत्रों में बहुतायत मात्रा में उपलब्ध है तथा यह परती रह जाती है मृदा का पी.एच. 5.5 से 6.5 होने पर मिट्‌टी में 1 से 1.5 क्विन्टल बुझे हुए चूने का प्रयोग करना चाहिए। कुल्थी के खेती उचित जल निकासी वाली और उदासीन पी.एच. मान वालो सभी प्रकार की भूमियों में आसानी से की जा सकती है। खेत की 2–3 बार जुताई करने के पश्चात पाटा चलाकर समतल कर लेना चाहिए। क‍ल्थी की खेती उपर वाली जमीन में होती है जिसमें पानी का जमाव नही हाता। अंतिम जुताई के समय 50 क्विन्टल /हे. सडो गोबर की खाद खेत में अच्छी तरह मिला दें।

बुवाई का समयः–

क‍ल्थी की बुवाई का सवोत्तम समय जून के अंतिम सप्ताह से अगस्त का पूरा महीना होता है। क्योंकि अलग–अलग जगहों में ब‍वाई के समय की विभिन्नता है। जैसे –झारखण्ड में अगस्त का महीना सवात्तम होता है एवं बिहार में जून के अंतिम सप्ताह से 15 जुलाई तक अच्छा रहता है परन्तु इसकी विलम्ब तक (अगस्त) बुवाई की जा सकती है।

बीज दरः–

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए पौधों की समुचित संख्या का होना आवश्यक है। पौधो की समुचित संख्या प्राप्त करने के लिए उचित बीज दर 20 किलोग्राम/हे. की दर से प्रयोग करना चाहिए।

बुवाई की विधिः–

कुल्थी की बुवाई किसान सामान्यतः छिटकवा विधि से करते आ रहे हैं। परन्तु अधिक उपज प्राप्त करने के लिए कुल्थी की बुवाई कतार पद्धति से करना चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 से.मी. तथा पौधे–पौधे की दूरी 10 से.मी. का अंतर रखते हुए बुवाई करना उपयुक्त होता है।

कुल्थी के अनुशंसित प्रभेद :–

बिरसा कुल्थी–1 : इस किस्म को पकने में 90 से 105 दिनों का समय लगता है तथा इसकी खेती करके 8 से 10 कुन्टल/हे. उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है।

वी.एल.जी.–19:–इस किस्म की पकने की अवधि 100 से 105 दिन तथा इसकी उपज 8.5 से 10 कुन्टल/हे. है।

ऐ.के.–21 :– यह किस्म 80–90 दिनों में पक कर तैयार होती है। इसकी खेती करके 8–10 कुन्टल/हे. उपज प्राप्त किया जा सकता है।

मधु बी.आर. 5 एवं आर.10 :– यह किस्म विलम्ब से बुवाई के लिए उपयुक्त है

बीजोपचारः

बुवाइ के 24 घंटे पूर्व कुल्थी के बीज का

दवा से अवश्य उपचारित करें। इसके लिए 2–2.5 ग्राम कार्बेन्डजिम प्रति किलो बीज की दर से बीजों को ड्रम या घड़े में डालकर दवा को मिला दे तथा छाया में सुखने के लिए छोड़ दें। बीजापचार बीज की सतह पर लगी का विनाश होता है तथा भूमि में रहन वाले रोगाणुओं को भी नाश करके अंकुरण को बढ़ता है।

इसके पश्चात फफूंदनाशी दवा से उपचारित बीज का जीवाणु कल्चर से उपचारित करना आवश्यक है। इसके लिये 1 ली. गर्म पानी में 250 ग्राम गुड़ का घोल बनाये तथा ठण्डा करने

के बाद 500 ग्राम राइजोबियम कल्चर एवं 500 ग्राम पी.एस.बी. कल्चर प्रति हेक्टेयर को दर से मिलायें। कल्चर मिले घोल को इस तरह से मिला ले कि बीजो पर एक लेप की परत बन जाये एवं बीज को छाया में सुखाकर दुसरे दिन बुवाई करें।

उर्वरक प्रबंधनः

कुल्थी की अधिकतम पैदावार के लिए खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग मिट्टी परीक्षरण के आधार पर करना चाहिए। अच्छी पैदावार के लिए 20 किलोग्राम नाइट्रोजन 40 किलोग्रम फास्फोरस एवं 20 किलोग्राम पोटाश प्रति हेक्टेर प्रयोग करना चाहिए।

उर्वरक	मात्रा	जीवाणु खाद
यूरिया	10 कि./हे.	बुवाई से पहले बीज को जीवाणु खाद (राइजोबियम कल्चर) से उपचारित करना चाहिए
डी.ए.पी.	88 कि./हे.	
म्यूरेट ऑफ पोटाश	33.33 कि./हे.	

डी.ए.पी. एवं पोटाश की सम्पूर्ण मात्रा बुवाई के समय प्रयोग करना चाहिए। यूरिया का 20–25 दिन बाद खड़ी फसल में छिड़काव करना चाहिए। फूल बनते समय बोरॉन की मात्रा 2 ग्राम/ली. पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए। जिससे उपज में वृद्धि होती है साथ मे फसलों के वृद्धि के लिए एन.पी.के. 19:19:19 की 5 ग्राम/ली. मात्रा का 40 दिन एवं 55 दिन पर छिड़काव करना चाहिए।

निकाई–गुड़ाई एवं खर–पतवार प्रबंधन :

खरीफ की फसल होने के करण कुल्थी में खरपतवार का प्रकोप अधिक होता है। अतः पहली निकाई–गुड़ाई बुवाई के 20 दिनों बाद एवं दूसरी 35–40 दिनों बाद करना लाभप्रद है। निकाई–गुड़ाई से खरपतावर खेत से बाहर निकाले जाते हैं और साथ ही मिट्टो मुलायम हो जाती है और इसका सीधा असर कुल्थी के उत्पादन पर पड़ता है।

रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रणः खरपतवार नियंत्रण हेतु पेन्डीमेथिलीन (30 ई.सी.) 3.0 ली. मात्रा को 600–700 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरंत बाद (अंकुरण से पूर्व) छिड़वाव करने से खरपतवार का प्रकोप कम होता है।

सिंचाईः

कुल्थी में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। हालांकि फली बनते समय एक सिंचाई करने से कुल्थी के दाने अधिक पुष्ट होते हैं एवं उपज बढ़ जाती है।

पौध संरक्षणः

जड़ या पत्तियों में बीमारी से बचाव के लिए बीज उपचार करें। प्रकोप दिखाई देने पर कार्बेन्डाजिम 75 प्रतिशत डब्लू.पी. का 2 ग्राम/ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। फली बनते समय फली भेदक कीट का आक्रमण होता है ऐसी स्थिति में फसल के बचाव के लिए नीम निर्मित कीटनाशक 5 मि.ली./ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें। कीटों द्वारा अधिक हानि की सम्भावना होने पर रोगोर या क्यूनालफॉस 2 मि.ली. /ली. पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

कटनी, दौनी एवं बीज भंडारणः कल्थी की फलियाँ एक बार पक कर तैयार हो जाती है। पकने पर फलियों का रंग भूरा हो जाता है तथा पौधे पीले पड़ने लगते हैं। पके हुए पौधों को हॅसुए से काट कर धूप में सुखाकर, दौनी करके दाना अलग कर लें। कल्थी क दानों को अच्छी तरह सुखाकर ही (10–12 प्रतिशत नमी) पर भण्डारित करना चाहिए। कीटों के आक्रमण से बचाव के लिए कुल्थी के साथ सिदवार या नीम के पौधों की पत्तियां रखें। भंडारण में रसायनिक विधि से कीट नियंत्रण के लिए सल्फॉस की 1 गोली प्रति कुन्तल की दर से प्रयोग करें। भंडार कक्ष में वायु का प्रवेश न होने दें।

गुणों की खानः नोनी

संजीव कुमार एवं शिवानी
भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनुसंधान परिषद्, पटना

नोनी (Morinda Citrifotia) एक आषधीय वृक्ष है, जिसके पत्ते, फल एवं जड़ सभी का प्रयोग कई प्रकार की दवाइयों में किया जाता है। यह एक छोटा वृक्ष है, जिसकी ऊँचाई लगभग 10 से 15 फीट तक होती है। इसके पत्ते गहरे हरे रंग के मोटे, लंबे, चमकीले एवं गहरी शिराओं वाले होते हैं। फल करीब 3–5 इंच लंबे, अंडाकार तथा पीलापन लिए हुए सफेद रंग के होते हैं तथा पकने पर भी मुलायम ही रहते है। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से नोनी एक महत्वपूर्ण फल है, परन्तु पके हुए फल से कुछ अलग सी गंध आने के कारण इसकी लोकप्रियता में हाल के वर्षों में कमी आई है। यह एक उष्णकटिबंधीय फल है, जिसे सामान्यतः "Indian Mulberry" के नाम से जाना जाता है। इसकी उत्पत्ति दक्षिण–पूर्व एशिया एवं आष्ट्रेलिया में हुई परन्तु आजकल इसे उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में भी उगाया जा रहा है। नोनी घने वनों में से लेकर खुले बलुआही समुद्र तटों पर भी उगता है। चूंकि पकने पर इसके फलों से तीखी गंध निकलती है, अतः इसे " Cheese fruit या Vomit fruit भी कहा जाता है। फल अंडाकार तथा 10 से 18 से.मी. तक होते हैं। कच्चे फल हरे रंग के होते हैं, जो बढ़ने पर पीले एवं पकने पर सफेद हो जाते हैं, जिसमें काफी संख्या में बीज होते हैं। हालांकि इसक फलों से सड़ी हुई गंध आती है तथा स्वाद भी अच्छा नहीं होता पर इसमें पाये जाने वाले औषधीय गुणों के कारण यह काफी महत्वपूर्ण फल है। दक्षिण भारत के कई मंदिरों में नोनी के वृक्ष पवित्र तुलसी के बगल में लगाए हुए दिखते हैं। हमारे देश में विभिन्न भाषाओं में इसके भिन्न–भिन्न नाम हैं, जैसे Indian Mulberry, Great Morinda, बारटुंडी(हिंदी), मोगली(तेलुग), नागकुंडा(मराठो), नुना(तमिल), मनपवन्ता(मलयालम), तगासे माडी(कन्नड़), सुरंगी(गुजराती), पिंडरे(ओडिया), हुरदी(बंगाली), बारटोंडी(कोंकणी) इत्यादि।

भारत में नोनी की उपलब्धताः

नोनी का प्रयोग पहले ग्रामीण क्षेत्रों में परंपरागत रीति द्वारा बनायी गई औषधीयों में किया जाता था। वर्ष 2006 से इसकी लोकप्रियता पश्चिमी देशों में भी बढ़ने लगी। बोतलों में बंद स्वास्थ्यवर्धक महंगे नोनी का रस (Noni Juice) बाजारों में बहुत तेजी से बिकने लगा तथा इसकी प्रसिद्धि कई ऐसे देशों में भी फैलने लगी, जिन्होंने कभी नोनी का नाम सुना भी नहीं था। भारत में नोनी तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र, कर्नाटक, और आंध्र प्रदेश और ओडिशा राज्यों में पाये जाते हैं। ये पेड़ उल्लखनीय रूप से कठोर होते हैं, और इसमें लगाने के एक वर्ष के भीतर फल आने लगते हैं तथा यह 30 से 50 वर्षों तक फल देते हैं।

नोनी फल और नोनी जूस

नोनी का स्वाद सार्वभौमिक रूप से नापसंद होता है। यह आम सहमति है कि यह कड़वा होता है। नोनी में जरा भी मिठास नहीं होती है, बल्कि इसका स्वाद धात्विक और कसैला होता है। केवल मिठास लाने वाले, आमतौर पर अंगूर या सेब के रस के साथ नोनी जूस का स्वाद स्वादिष्ट बनाया जाता है। एक बार पतला होने के बाद, नोनी के स्वाद को समझना लगभग असंभव है। शुद्ध मिलावट रहित जूस का ''धुआंदार नारियल'' और ''बासी पनीर'' के रूप में वर्णित किया गया है।

नोनी की गुणवत्ता

100 मिलीलीटर नोनी रस में उपलब्ध पोषक तत्त्व निम्नलिखित हैंः ऊर्जा/100 ग्रामः 27 कि. केलोरी,> 0.1 ग्राम फैट (नगण्य), 0.5 ग्राम प्रोटीन, 4 ग्राम राख, 0.6 ग्राम फाइबर (2.4% आरडीआइ), 6 ग्राम कार्बोहाइड्रेट, 9 मिलीग्राम सोडियम, 150 मिलीग्राम पोटेशियम (4.2% आरडीआइ), 6 मिलीग्राम कैल्शियम, 11 मिलीग्राम मैग्नीशियम (2.7% आरडीआई), 4 मिलीग्राम आयरन (2.2% RDI), 10 मिलीग्राम फॉस्फोरस, 62 मिलीग्राम क्लोराइड (1.4% आरडीआइ), 70 मिलोग्राम मिलीग्राम B12, 0.169 मिलीग्राम पैंटोथैनिक एसिड (1.6% आरडीआई),0.194 मिलीग्राम नियासीन, 4.07 माइक्रोग्राम बायोटिन(1.3% आरडीआई), 11.4 माइक्रोग्राम फोलिक एसिड (2.8% आरडीआई),43.2 मिलीग्राम विटामिन C(72% आरडीआई), 0.05 माइक्रोग्राम विटाामिन E इत्यादि।

नोनी में उपलब्ध औषधीय गुणः

नेनी फल में कई लाभकारी रसायन होते हैं, जिनमें निम्न चीजें शामिल हैंः

- एंथ्राक्विनोनः जीवाणुरोधी, एंटी–वायरल, कोलेस्ट्रॉल कम करने वाला, एंटी–ट्यूमर, शामक और एक कोलेजन संश्लेषण
- ग्लाइकोसाइड्सः एंटी–कैंसर आर एंटी–ट्यूमर
- लिग्नंसः एंटीऑक्सिडेंट और धमनीकाठिन्य
- पॉलीसैकराइड्सः इम्यूनो–मॉड्यूलेटरी
- स्टेरोल्सः उचित होर्मोन कार्य के लिए आवश्यक
- स्कोपोलेटिनः उच्च रक्तचाप, एंटी–बैक्टीरियल, एंटिफंगल, दाहक विरोधी, एनाल्जेसिक, हिस्टामाइन अवरोधक, गठिया, एलर्जी, नींद संबंधी विकार, सिरदर्द, अवसाद और अल्माइमर

वैज्ञानिक अध्ययनों के द्वारा भी नोनी के गुणों की पुष्टि की गई है, जिनमें से कुछ का उल्लेख यहाँ किया गया है:

- लाइफ सांइस में प्रकाशित 2006 के एक अध्ययन में पाया गया कि नोनी के स्कोपोलेटिन यौगिक में लिम्फोमा कोशिकाओ के विरूद्ध गैर–प्रसार विरोधी गतिविधियां हैं।
- हालांकि एक छोटे से नमूने पर, माउंट सिनाई स्कूल ऑफ मेडिसिन के डॉ. स्कॉट गर्सन ने 14 सप्ताह का डबल–ब्लाइंड अध्ययन किया और पाया कि नौ में से आठ मरीजों ने नोनी लिया, जिनमें निम्न रक्तचाप दिखा।
- 2008 में बायोलॉजिकल एंड फार्मास्यूटिकल बुलेटिन में प्रकाशित एक अध्ययन में पाया गया कि नोनी जड़ों ने स्ट्रेप्टोजोटोकिन–प्रेरित डायबिटिक चूहों पर एक हापोग्लाइसेमिक प्रभाव दिखाया।
- प्लांट फूड्स फॉर ह्यूमन न्यूट्रिशन में 2008 में प्रकाशित एक अध्ययन में पाया गया कि नोनी का रस हेपेटोटॉक्सिक संक्रमणों को कम करके चूहों के जिगर को विषाक्त होने से बचाता है।
- ''फोटोथेरेपी रिसर्च'' में 2009 के एक अध्ययन में प्रकाशित निष्कर्षों से पता चलता है कि नोनी फल प्रभावी रूप से गठिया के कारण दर्द और संयुक्त विघात को कम करते हैं।

मिट्टी एवं जलवायु

नोनी उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में अच्छी तरह बढ़ता है। इसकी फसल पूरे वर्ष उगाई जा सकती है, हालांकि सर्दियों की तुलना में गर्मियों में अधिक फलों की पैदावार होती है। नोनी प्रतिकूल वातावरण में जीवित रहने की एक उल्लेखनीय क्षमता के साथ मिट्टी और पर्यावरण के एक विस्तृत चयन में बढ़ता है। यह रेतीली एवं लवणीय मृदा में तेजी से बढ़ता है। नोनी मौसमी जलभराव सहित जल निकासी की एक विस्तृत विविधता को सहन करता है, लेकिन इसके लिए जल निकास की क्षमता वाली मिट्टो उपयुक्त है। यह अम्लीय परिस्थितियों को एक विस्तृत श्रंखला में विकसित हो सकता है। परिपक्व रूप से की गई खेती में नोनी आसानी से 20^0C से 35^0 C तापमान और 25 सेमी से 40 सेमी की औसत वार्षिक वर्षा को सहन कर सकता है।

भूमि की तैयारी

नोनी से जड़–गाँठ सूत्रकृमि की संवेदनशीलता के कारण उन स्थानों से बचें जहां अन्य फसल हाल ही में लगाई गई हैं। अच्छी तरह से जल निकास वाली, अच्छी तरह से वातित मिट्टी के साथ पूर्ण या आंशिक रूप से जहाँ धूप आए, उस स्थान का चयन करें। हंडिया के आकार का एक छेद तैयार करें और ध्यान से प्रत्यारोपण करें। पठारी स्थानों में, एक क्षैतिज या कम

ढलान वाले खेत को तैयार करने के लिए श्रेणीकरण से पहले भूमि की जुताई करें। नोनी के छोटे पौधें के प्रत्यारोपण के समय तीव्र वेग से चलने वाली हवाओं से बचाव करना आवश्यक है। इसके संरक्षण के लिए वात रोध की व्यवस्था करनी चाहिए।

यूकलिप्टस जैसे पेड़ों को 150 से 175 फीट दूर प्रत्यारोपित किया जाना चाहिए, यह नोनी के लिए उत्कृष्ट वातरोध है। खेत में किसी भी प्रकार के ढेलों, खरपतवार एवं सूखे पेड़ को हटा दें और मिट्टी को अच्छी बुवाई की स्थिति में लाने के लिए एक–दो जुताई करें। भूमि को एक इष्टतम स्तर पर समतल किया जाना चाहिए।

प्रजनन

नोनी के रोपण का समय जून महीने से अक्टूबर महीने तक है। इसे अधिकतर बीज अथवा तने की कटिंग द्वारा लगाया जाता है। नोनी में सालों भर फूल और फल लगते हैं। फलों को उन पौधों से इकट्ठा किया जाता है जिनमें वांछनीय विशेषताएं होती हैं, जैसे कि फलों के उत्पादन के लिए बड़े फल का चुनाव आदि। नोनी का प्रजनन तने की कटिंग द्वारा भी किया जाता है। कटिंग की लम्बाई यदि 20–40 से.मी. हो तो ज्यादा प्रभावी होती है। तने की कटिंग 3 सप्ताह में जड़ पकड़ सकती और 6–9 सप्ताह में प्रतिरोपण के लिए तैयार हो सकती है। बीजों से प्राप्त पौधों को तरह, जड़ एवं तने की कटाई को 24 सप्ताह तक या उससे भी अधिक समय तक प्रत्यारोपित कर उत्कृष्ट परिणाम के साथ बर्तनों में उगाया जा सकता है।

समय–समय पर पानी में धोने से फलों से पल्प अच्छो तरह निकल जाते हैं। बीज में एक हवा का बुलबुला फंसा होता है, इसलिए अधिकांश अन्य बीजों के विपरीत, स्वस्थ नोनी के बीज पानी में तैरते हैं। यदि बीज का तुरंत उपयोग किया जाता है, तो नरम फलों को पानी में छोड़ दिया जाता है तथा ब्लेंडर की मदद से यदि बीज को संग्रहित करना है, तो गुददा को पूरी तरह से हटा दिया जाना चाहिए, फिर बीज को सुखाया जाता है और कम नमी वाले ठंडे कमरे मे पेपर बैग में संग्रहित किया जाता है। ताजे बीजों में अंकुरण अक्सर 90 प्रतिशत से अधिक होता है।

बीजोपचार

इसे अंकुरित होने में 6–12 महोनों का लंबा समय लगता है। सख्त बीज काट का स्कारीफिकेशन द्वारा अंकुरण के समय को कम किया जा सकता है जो समग्र अंकुरण प्रतिशत को बढा सकता है। स्कारीफिकेशन किसी भी भौतिक विधि से प्राप्त किया जा सकता है, जिससे बीज के आवरण को छेद कर, काट कर क्षति पहुंचाता है और अंकुरण में मदद करता है। एक सरल तरीका यह भी है कि पके फलों को ब्लेंडर में रखें और कुछ समय के लिए

चला द। तापमान, पर्यावरण और विविधता के आधार पर, खुरचे हुए नोनी के बीजों का अंकुरण 20–120 दिनों में होता है।

प्रतिरोपण

अंकुरण के लगभग 2–12 महीने बाद नोनी के पौधों का प्रतिरोपण किया जा सकता है। प्रतिरोपण के बाद, प्रथम वर्ष में प्रतिरोपित पौधों का विकास TRANSPLANT SHOCK और जड़ प्रणाली की स्थापना के कारण धीमा रहता है। द्वितीय वर्ष से इसकी वृद्धि तेजी से होती है

पौध–संरक्षण

नोनी को कई प्रकार के कीड़े क्षति पहुंचाते हैं, जैसे एफिड्स (उदाहरण मेलन एफिड, एफिस गोसिपाई) स्केल्स (उदाहरण, ग्रीन स्केल, कोकस विरिडिस) वीविल्स, लीफ माइनर, व्हाईटफलाईज (उदाहरण, क्रोटर कैटरपिलर), थ्रिप्स (उदाहरण, ग्रीनहाउस थ्रिप्स, हेलियोथ्रिप्स हेमराहाइटल और एरीओफाइड माइट की एक अज्ञात प्रजाति।

उर्वरक का अत्यधिक उपयोग चूसक कीटों (जैसे एफिड्स, व्हाइटफ्लाइज, स्केल) को आकर्षित कर सकता है जो नोनी की पत्तियों पर कालिखीय मोल्ड का निर्माण करते हैं। चूसने वाले कीट को वर्ष में दो बार सिस्टेमिक कीटनाशकों के छिडकाव और लार्वा/पिल्लू को कोन्टेक्ट कीटनाशक द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।

अधिक नमी युक्त हवा में, उच्च–वर्षा या बाढ़ वाले क्षेत्रों में, नोनी में फफूंद जनित पादप रोग होते हैंः पत्ती में धब्बे, तना, पत्ती, और फ्रूट ब्लाईट (फाइटोफ्थोरा प्रजाति और स्क्लेरोटियम रोल्फसाई)। फंगल लीफ स्पॉट रोग इत्यादि। उन्हें स्वच्छता (गंभीर रूप से रोगग्रस्त पत्तियों को हटाकर) उचित कवकनाशकों (तांबा आधारित कवकनाशी) के समय–समय पर प्रयोग द्वारा कम किया जा सकता है। पत्तियों को प्रभावित करने वाले कुछ फफूंद रोग फंगल लीफ स्पॉट पत्तिया के विकास और फलों के विकास को रोक सकते हैं। नोनी के लिए सबसे आम और गंभीर कीट समस्या रूट–नॉट नेमाटोड के कारण होने वाली जड़–गाँठ है।

फसल और उपज

नोनी के फलों की कटाई तब की जाती है जब वे सफेद होने लगते हैं, या जब वे पूरी तरह से नरम, पारदशी एवं पक चुके होते हैं। नोनी के वृक्ष में तीन वर्ष के बाद फल लगने शुरू हो जाते हैं। नोनी की वार्षिक उपज इसकी किस्मों, खेती प्रणाली एवं पारिस्थितिकी तंत्र पर निर्भर करती है। लगभग 80 टन/हेक्टेयर या उसे अधिक की वार्षिक पैदावार को भारी खाद के साथ मोनाकल्चर पूर्ण सूर्य में उगने वाले बड़े फल वाले जीनोटाइप के साथ प्राप्त किया जा

सकता है। उपज मिट्टी की उर्वरता, पर्यावरण, जीनोटाइप और रोपण घनत्व सहित कई कारकों पर निर्भर करती है।

उपयोग

नोनी उच्च रक्तचाप को कम करने में मदद करता है और हृदय रोग और स्ट्राक को ठीक करता हे। यह स्कोपोलेटिन की उपस्थिति के कारण होता है, जो वैज्ञानिक रूप से रक्त वाहिकाओं को पता करने के लिए सिद्ध हुआ है जिसके परिणामस्वरूप निम्न रक्तचाप होता है। इसके अलावा, यह शरीर में नाइट्रिक ऑक्साइड, एक रसायन जो रक्त वाहिका को अधिक आसानी से पतला करने ओर अधिक लोचदार होने देता हे, के उत्पादन को उत्तेजित करता है। जेरानिन प्रणाली रक्तवह–तन्त्र के भीतर एक स्वस्थ संरचना को बढ़ावा देती है। स्कोपोलेटिन में एक और हिस्टामाइन निरोधात्मक प्रभाव होता है, जिसमें दोनों सुगम संयुक्त संचलन को बढ़ावा देने के लिए उत्कृष्ट हैं। नोनी में कई अद्भुत गुण हैं। यह गठिया रोग के कारण होने वाले जोड़ो के दर्द में काफी आराम पहुंचाता है। यह अग्न्याशय और प्रतिरक्षा प्रणाली के कामकाज को बढ़ाने में भी मदद करता ह। यह मधुमेह को भी कम कर सकता है। नोनी हृदय कोशिकाओं में अधिक मैग्नीशियम का योगदान करता है जो एक उचित हृदय ताल को विनियमित करने में मदद करता है। यह ब्रोंकाइटिस की सेलुलर संरचना को बढ़ाकर ब्रोंकाइटिस संक्रमण को साफ करता है। नोनी एलर्जी और सूचन का ठीक करने में मदद करता है जो अस्थमा का कारण बनता है। यह यकृत और हार्मोन रिसेप्टर्स के प्रभाव पर असर दिखाकर हार्मोन को संतुलित करके मासिक धर्म के समय होने वाले सिरदर्द में भी मदद करता है। यह तंत्रिका क्षति के कारण सुन्न की स्थिति को कम करने में मदद करता है। नोनी की चाय मलेरिया, सामान्य बुखार और एनाल्जेसिक के इलाज में मदद करती है। नोनी के तने की छाल से तैयार काढ़े का उपयोग पीलिया के इलाज के लिए किया जाता है। बीज के तेल का उपयोग स्कैल्प कीटनाशक की तैयारी में किया जाता है। पत्ती या फलों के लेप यक्ष्मा (टी. बी.), मोच, गहरी चोट और गठिया को ठीक करने में मदद करते हैं। यह भी माना जाता है कि फलों का उपयोग भूख और मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाने वाले दवा के रूप में किया जाता है। छाल में एक लाल रंगद्रव्य होता है और जड़ों में एक पीला रंगद्रव्य होता है जिसका उपयोग रंगने का द्रव्य बनाने में किया जाता है। नोनी से तैयार रंगों को पारंपरिक रूप से और अभी भी कपड़े रंगने के लिए उपयोग किए जाते हैं

धान के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

अभिषेक कुमार दूबे, मनीषा टम्टा, संतोष कुमार एवं राकेश कुमार

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

धान, दुनिया के सबसे महत्वपूर्ण खाद्य फसलों में से एक है। कम विविधताओं, संकीर्ण आनुवंशिक आधार और जलवायु परिवर्तन के कारण धान के प्रमुख रोग अधिक आक्रामक हो गए हैं और नए क्षेत्रों में फैल गए हैं। कई बीमारियां जो पहले मामूली मानी जाती थीं, वे कई क्षेत्रों में आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण हो गई हैं। उदाहरण के लिए, चावल की आभासो कंड, जिसे पहले एक बम्पर फसल का संकेत माना जाता था, कई क्षेत्रों में व्यापक और एक खतरनाक समस्या बन गई है। धान के प्रमुख रोग एवं उनके प्रबंधन से जुड़ी जानकारी धान पैदावार को बढ़ाने में अति लाभदायक सिद्ध हो सकती है। अतः इस फसल में होने वाले रोग एवं उनके प्रबंधन के बारे में उल्लेख इस प्रकार हैः–

1. **भूरी चित्ती रोगः** यह रोग फफूंद जनित है। यह पत्तियों पर छोटे–छोटे भूरे रंग के धब्बे के रूप में दिखाई देता है। (चित्र 1)। अधिक संक्रमण होने पर ये धब्बे आपस में मिल जाते हैं और पत्तियां सूख जाती हैं। इस राग का प्रकोप धान में कम उर्वरता वाले क्षेत्रों तथा सुखाड़ क्षेत्रों में अधिक दिखाई देता है।

   प्रबंधनः

   - बीजों को बोने से पहले, कार्बेन्डाजिम दवा (2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर) से उपचारित करना चाहिए।
   - कंटाफ (कंटाफ/हेक्साकोनाजोल) 2 मिली लीटर/लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करना चाहिए।
   - उर्वरक का उचित मात्रा में उपयोग करना चाहिए।

2. **झोंका (ब्लास्ट) रोगः** धान का यह ब्लास्ट रोग अत्यंत विनाशकारो होता है। इसके लक्षण, पत्तियों, तना के जोड़ों एवं बलियों पर दिखाई देते हैं। पत्तियों पर धब्बे नाव की की तरह दिखाई देते हैं। धब्बों के बीच के भाग राख के रंग का तथा किनारे कत्थई

रंग के घेरे की तरह होते हैं। इस रोग का प्रकोप सगंधित धान में अधिक पाया जाता है। तने की गाठें काली हो जाती हैं तथा दोनों तरफ फैलने लगती हैं। बालियों के ग्रीवा पर सड़न पैदा होने लगती है जिससे वो कमजोर होकर टूटने लगते हैं (चित्र 2)

प्रबंधनः

- नाइट्रोजन उर्वरक उचित मात्रा में थोड़ी–थोड़ी करके कई बार में देना चाहिए।
- बीम (ट्राईसीक्लॉजोल) नामक दवा की 4–6 मिलीग्राम मात्रा को 10 लीटर पानी में घोलकर छिडकाव करना चाहिए।

3. पर्णच्छद अंगमारी/शीथ झुलसा/ शीथ ब्लास्टः इस बीमारी के लक्षण पानी की तरह से ठीक ऊपर से शुरूआत होता है तथा अधिक गंभीर स्थिति में बालियों तक भी पहुच जाता है। यह पौधे के आवरण पर अंडाकार हरापन लिए हुए उजला धब्बा बनाता है जिसका केन्द्रीय भाग सफेद होता है तथा किनारों पर भूरा रंग होता है। पत्तियों के आधार पर बड़े–बड़े, हरे–भूरे पुआल के रंग के धब्बे बनते हैं (चित्र 3)। बाद में ये पौधा झुलसा हुआ प्रतीत होता है। बालियों के दाने भी बदरंग हो जाते हैं।

प्रबंधनः

- घास तथा फसल अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए। गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें।
- धान के बीज को ट्राइकोडर्मा 4 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित करके बुआई करें।
- खेत में रोग से ग्रसित एक भी पौधा नजर आते ही काटकर निकाल दें।
- प्रेपिकोनाजोल (टिल्ट) 25 एस सी @ 1 मिली लीटर/लीटर या शीथमार (वैलिडामाइसिन) नामक दवा की 2 मिली लीटर/लीटर या टेबुकोनाजोल (फॉलिक्योर) 1.5 मिली लीटर /लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।
- अधिक नाइट्रोजन का प्रयोग न करें।

4. **आसी कंड/ कूट कलिका रोगः** यह एक फफूंद जनित रोग है। इस रोग के लक्षण पौधों में बालियों के निकलने के बाद ही दिखाई देते हैं। रोग ग्रस्त दाने पीले से लेकर संतरे के रंग के हो जाते हैं जो बाद में हरे एवं अंत में काले रंग के गोलों में बदल जाते हैं (चित्र 4)। गोले थोड़ी चपटी, चिकनी और झिल्ली से ढकी होती है। झिल्ली के फटने पर स्पोर बाहर निकलते हैं इस रोग का प्रकोप अगस्त–सितम्बर माह में अधिक दिखायी देता है। इस बीमारी को इसकी कभी–कभार होने के कारण नजरअंदाज कर दिया गया था लेकिन जलवायु के बदलते परिवेश में यह एक गंभीर समस्या बन गई है।

प्रबंधनः

- फसल कटाई से पूर्व ग्रसित पौधों को सावधानी से काट कर अलग कर लें तथा नष्ट कर दें।
- जिन क्षेत्रों में यह रोग अक्सर लगता है उन क्षेत्रों में पुष्पन के दौरान कवकनाशी रसायन जैसे कापर आक्सीक्लोराइड–50 घुलनशील पाउडर का (0.3 प्रतिशत) या कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) (2 ग्रा/ली पानी) या प्रोपिकोनाजोल (टिल्ट) 25 एक सी @ 1 मिली लीटर /लीटर या क्लोरोथालानिल (2 मि ली/ली पानी) छिड़काव करना चाहिये।

5. **पर्णच्छद विगलनः** इस बीमारी के लक्षण के रूप में भूरे धब्बे मुख्यतः ऊपरी पर्णच्छद पर दिखाई देते हैं (चित्र 5)। शुरूआत में ये धब्बे छोटे होते है पर बाद में पूरे पर्णच्छद को घेर लेते हैं। गंभीर सक्रमण के कारण ध्वज पत्तियों के पर्णच्छद से बालियों के कुछ

हिस्से निकलते ही नहीं हैं जो सड़ जाते हैं। जो निकलते हैं उनके दाने सिकुड़े हुए, आंशिक या अधूरे, और मुरझाए हुए या सड़े हुए होते हैं। प्रभावित पर्णच्छद और बालियों के अंदर सफेद चूर्ण बनता है।

प्रबंधनः

- प्रतिराधी/सहनशील किस्में उगाएं।
- कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी @2.0 ग्राम/ किग्रा बीज या कैप्टाफोल 75 डब्ल्यूपी @ 4 ग्राम/किग्रा के साथ बीजोपचार करें।
- कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी @2.0 ग्राम/लीटर या प्रोपिकोनाजोल (टिल्ट) 25 एससी @1 मिली लीटर /लीटर पानी छिड़काव करें।

6. **तलगलन/बकानेः** सक्रमित पौधें सामान्य पौधों की तुलना में पतले और असामान्य रूप से बड़े होते हैं (चित्र 6)। रोग की उग्र दशा में ये पौधे रोपाई से पूर्व ही मर जाते है। रोपाई के बाद खेत में पौधे ऐसे ही पीले, पतले तथा लम्बे हो जाते हैं। संक्रमित पौधों के निचले भागों पर बने बीजाणु हवा द्वारा स्वस्थ पौधों के फूलों पर संक्रमण करते हैं तथा रोगग्रस्त दाने बनते है, जो अंकुरण बाद रोग प्रकट करते हैं। परिपक्वता तक पहुंचने वाली फसलों में, संक्रमित पौधे लंबे हरे रंग के ध्वज पत्तियों वाले दिखते हैं। संक्रमित पौधों में आमतौर पर टिलर की संख्या कम होती है।

प्रबंधनः

- हल्के वजन के बीज को अलग करने के लिए नमक के पानी का उपयोग करना चाहिए। इससे बीज से संक्रमित बीज अलग हो जाता है और बीज जनित इनोकुलम कम हो जाता है।
- रोपाई के समय रोगग्रस्त पौधों को न रोपें और उन्हें अलग कर दें।
- संतुलित उर्वरक का प्रयोग करना चाहिए।
- रोपण से पहले कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 50 प्रतिशत डब्ल्यूपी @ 2.0 ग्राम/किग्रा या डाई एथेन एम –45 @2.0 ग्राम/ किग्रा बीज के साथ बीज उपचार प्रभावी है।

7. तना गलनः प्रारंभ में इस रोग का मुख्य लक्षण, जल स्तर के पास भूरे काले रंग के धब्बों के रूप में तना तथा पर्णच्छद पर दिखाई देता ह, जो की बाद में पूरी तरह से फैल जाता है (चित्र 7)। पौधे के तने को चीरने पर कवत जाल तथा उसमे काले–काले दिखाई देते हैं। सड़े हुए तने खींचने पर आसानी से टूट जाते हैं। तनागलन से रोग ग्रसित पौधे गिर जाते हैं।

प्रबंधनः

- प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करना चाहिए।
- फसल की अवधि के दौरान खेत से अतिरिक्त पानी निकाल देना चाहिए।
- नाइट्रोजन उर्वरकों का उचित उपयोग करना चाहिए।
- बूट लीफ अवस्था से 0.15 प्रतिशत बेनलेट या कार्बेन्डाजिम (बाविस्टिन) 50 प्रतिशत डब्ल्यू पी 2.0 ग्राम/लीटर या थायफेनेट मेथाइल @ 1.5 मिली लीटर/लीटर के साथ 10 दिनों के अंतराल पर दो बार छिड़काव करना चाहिए।

8. **उदबत्ता रोगः** रोग ग्रसित पौधों में सफेद कवक जाल, बालिओं को एक साथ बाँधता है जिससे बालिओं एक एकल, सीधे, गंदे रंग, बेलनाकार छड़ के रूप में निकलती दिखाई देती है (चित्र 8) जो एक जैसा दिखता है। पहले यह बंध्य पुष्पगुच्छ सफेद कवकजाल से ढकी रहती है और बाद में स्कलेरोशिया की तरह कड़ी हो जाती है। रोग ग्रस्त पौधे में ध्वज पत्ती के ऐंठन तथा संकरी धारियां बनते हैं। प्रभावित बालियों में कोई दाना नहीं बनता है।

प्रबंधनः

- प्रतिरोधी किस्में अथवा रोग रोधी किस्मों का चुनाव करना चाहिए।
- बीज को थिरम@ 2 ग्राम/किलोग्राम से उपचारित करना चाहिए।
- बीज को 10 मिनट के लिए 52 डिग्री सेल्सियस पर गर्म जल में उपचार करना प्रभावी होता है।
- क्षेत्र में रोगग्रस्त पौधों को नष्ट कर देना चाहिए।

9. **जीवाणुज पर्ण झुलसा रोगः** यह एक जीवाणु जनित रोग है जिसमे पत्तियों पर पीली या पुआल से रंग की धारियां एक या दोनों किनारों के सिरे से शुरू होकर नीचे की ओर बढ़ती है आर पत्तियां सूख जाती हैं (चित्र 9)। ये धब्बे पत्तियों के किनारे के समानान्तर धारी के के रूप में बढ़ते हैं। धीरे–धीरे पूरी पत्ती पुआल के रुंग में बदल जाती है। रोगी पत्तियों को काटकर शीशे के ग्लास में डालने पर दुधियां रंग का रसाव देखा जा सकता है।

प्रबंधनः

- संतुलित उर्वरकों का प्रयोग करें तथा खेत में समय–समय पर पानी निकालते रहें।
- बीमारी ग्रस्त खेतों का पानी द्सरे खेत में न जाने दें।
- स्वस्थ प्रमाणित बीजों का उपयोग करें।
- 2 ग्राम स्ट्रेप्टोसाइक्लिन को 10 लीटर पानी घोल कर बीज को बोने से पहले 7–8 घंटे तक डुबोकर बीज को उपचारीत कर लें।
- 52–54 डिग्री सेल्सियस पर 30 मिनट के लिए बीज का गर्म जल उपचार करना चाहिए।
- बीजो को स्थूडोमोनास फ्लोरेन्स 10 ग्राम प्रति किलो ग्राम बीज की दर से उपचारित करना भी लाभदायक होता है।
- खड़ी फसल में रोग दिखने पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन+ टेट्रासाइक्लिन हाइड्रोक्लोराइड 10 प्रतिशत

1.5 ग्राम/ लीटर या स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 1 ग्राम/10 लीटर तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (ब्लाइटॉक्स) का 1 ग्राम /लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

10. टुंग्रो रोगः यह एक विषाणु से होने वाला रोग है जो रोगी पौधों से स्वस्थ पौधों पर हरा तेला द्वारा फैलता है। जब हरा तेला, रोग ग्रस्त पौधे की पत्तियाँ खाता है, उस समय विषाणु उसके मुख भाग से चिपक जाते हैं। उसके पश्चात् यह कीट विषाणु को स्वस्थ पौधे में संचारण करने योग्य हो जाता है। कीटों का प्रबंधन न करने से रोग शीघ्रता से फैलने लगता है। विषाणु से ग्रस्त पौधे छोटे रह जाते हैं, पत्तियों पर शिराओं के समानान्तर पीले हरे से लेकर सफेद रंग की धरिया बनती हैं। प्रारम्भ में संक्रमण होने पर पौधे छोटे रह जाते हैं जबकि, बाद के संक्रमण में पौधे की लम्बाई ज्यादा प्रभावित नहीं होती। पौधों का विकास अवरूद्ध हो जाता है और टिलर की संख्या कम हो जाती है। परिपक्वता अवस्था में बाली पूरो तरह से बाहर नहीं निकलते हैं या आंशिक रूप से भरे हुए दानों के साथ पाए जाते हें। टुंग्रो संक्रमित पौधे में जड़ विकास का भी विकास सही से नहीं होता है।

प्रबंधनः

- प्रतिरोधी किस्में उगाएं
- ट्राईजोफोस 20 प्रतिशत ईसी @2.5 मिली/ लीटर या थायमेथोक्साम 25 प्रतिशत डब्ल्यूजी@ 0.2 ग्राम/लीटर या फिप्रोनिल 5 प्रतिशत एससी @2 मिली लीटर /लीटर या इमिडाक्लोप्रिड 20 एस.एल. 0.25 मिली/लीटर के साथ छिड़काव के माध्यम से हरा तेला को नियंत्रित करें।

धान की फसल में होने वाले खरपतवारों की पहचान एवं नियंत्रण

दुष्यन्त कुमार राघव, इन्द्रजीत, धर्मजीत खेरवार, सन्नी कुमार, सन्नी आशीष बालमुचू, शशि कान्त चौबे एवं ए.के. सिंह*

कृषि विज्ञान केन्द्र, रामगढ़, भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनु. परिसर, पटना

***भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनु. परिसर, शोध केन्द्र, रॉची**

वषा आश्रित प्रदेश झारखण्ड में धान मुख्य फसल की श्रेणी में आती है। उन्नत किस्मों की उपलब्धता के कारण किसान उत्पादन की अधिक प्राप्ति हेतु विभिन्न कृषि तकनीको का खेती में समावेश कर रहे हैं, लेकिन हाल में देखा गया है कि खरपतवारो की समस्या के कारण उत्पादन में वृद्धि नही हो पा रही है। हालांकि बाजार में नई पीढ़ी के खरपतवारनाशी रसायन बहुतायत उपलब्ध है लेकिन अज्ञानता के अभाव के कारण किसान इनके लाभ से वंचित ह। अनुमानतः धान में खरपतवारो से 30-40% तक उपज में कमो हो जाती है।

मुख्यतः धान में होने वाले खरपतवारो की तीन श्रेणी में बाटते है।

1. घास कुल – इसके अर्न्तगत निम्नलिखित खरपतवार आते है।

a) इकाइनोक्लोआ कोलोनाम (छोटा सावंक) – सामान्य नाम : जगल धान, जंगल घास। इसे छोटा सावक, सामा, बनसो, भरता इत्यादि जातोय नामों से पहचाना जाता है।

पहचान :– यह धान का एक वर्षीय खरपतवार है, युवा पौध धान की तरह दिखते ह, पौधे, छोटे, सीधे व शाखाओं वाले, पत्तिया चिकनी, सकरी व जामुनी पट्टी जैसी दिखती है, तना सख्त, फूली हुई गाठ वाला व नीचे से बैंगनी रंग का होता ह।

b) इकाइनोक्लोआ क्रुस – गल्ली :– सामान्य नाम – बर्नयार्ड ग्रास (घास) जातीय नाम – सावक, साई, सनवा, बरटा।

पहचान :– पौधे का रंग धान के पौधे से हल्का हरा व पत्ता भी अपेक्षाकृत नरम व लम्बा, सीधी बढ़वार 100–150 से0 मी0 लम्बाई तक, बीज उत्पादन क्षमता 30000–40000 प्रति पौधा, बाली गुथो हुई व हल्के बालों सहित हल्के हरे रंग

की चमकदार, एक तरफ से चपटी व दूसरी तरफ से गोल होती है। अत्यधिक यूरिया प्रयोग वाले खेतों में ज्यादा पाया जाता है।

c) डकटाईलोक्टिनियम अजीपसियम वियोव :– सामान्य नाम – कोवा पंजा घास, जातोय नाम – मकडा घासा।

<u>पहचान</u> :– यह मघाणे के नाम से मशहूर एक वर्षीय खरपतवार है जो कि जमीन के उपर फैला रहता है। इसका फैलाव तने पर स्थित गाठों से निकलने वाली जडो से हाता है। लीफ ब्लेड व शीथ पर बाल नहीं पाये जाते है, पत्तो की चौडाई 2–8 मिलीमीटर एवं फुल पंजे की तरह होते है, बीज बहुत छोटे एवं खुरदरे होते ह।

d) पास्पेलम डिस्टीकम एल :– सामान्य नाम – नाट ग्रास, जातीय नाम – कोडी हु़का।

पहचान :– यह बहुवर्षीय सकरी पत्ती वाला खरपतवार घान की फसल में मुख्यतः पाया जाता है। इसकी वढवार जड के कंदो व तने के भ्स्तारिकाआ के माध्यम से होती ह, यह जमीन पर फैलकर बढता है तथा 60 सेंटीमीटर की उँचाई तक बढ़ सकता है। इसके पुष्प दो स्पाइकलेटस में बटे होते है। यह मेढ़ा के आसपास अधिक उगता है।

e) इल्युसीन इंडिका (L) गार्थन :– सामान्य नाम – इंडियन गूज घास, जातीय नाम – मडुवा।

यह एक वर्षीय खरपतवार सीधी बुवाई वाले घान की फसल में अधिक पाया जाता है। यह शाखाओं द्वारा जमीन पर चटाई की तरह फैलता है। इसका पुष्प उंगलियो जैसे गुच्छो के रूप में होते है। इसके बीजों का जमाव बरसात के मौसम से पहले हो जाता है।

f) बरकियारिया रेपटेन्स (एल) गार्ड व हब्ब :– सामान्य नाम – लेमन घास, जातीय नाम – भीसी, रिवरवां, पाराघास।

यह फैलने वाला एवं वर्षीय खरपतवार जिसके पौधे 15–60 से0मी0 लम्बे, पत्तियां अण्डाकार, सिरे नुकीले होते है। गांठ से जड निकल कर प्रसार करती है। इसे रेगने वाली घास भी कहा जाता है।

g) इराग्रोस्टोस पाइलोसा :– सामान्य नाम – इंडियन लवग्रास, जातीय नाम – चिडियो का दाना

सामान्यतः यह सीधी काई वाले धान में होता है। यह अधिक तेजी से बढता है, इसे छाया पसन्द है। इसका तना पतला, सख्त तथा गाठों वाला होता है। इसका फूल काफी खिला हुआ होता ह एवं इसके बीज छोटे होने के कारण चिडियाँ बहुत खुश होकर खाती है। इसका प्रसारण बीज के द्वारा फैलता है।

2. चौडो पत्ती फुल के खरपतवार :–

a) इकलिप्ता प्रोस्ट्रेटा एल :– सामान्य नाम – फाल्स डेजी,

जातीय नाम – जल भंगरा, सफेद फूल वाली बुटी, भिरंगराज, केना, केसुरिया।

पहचान :– यह एक वर्षीय चौडो पत्ती वाला दंडवत पडा हुआ सीधे तने वाला सफेद फूल वाला खरपतवार है। नमी वाले खेतों में मिलता है यह बीज से फैलता है यह सीधी बुवाई एवं रोपाई वाले घान की फसल में पाया जाता है।

b) इकलिप्टा एल्वा :– सामान्य नाम – फाल्स डेजी,

जातीय नाम – जल भंगरा, सफेद कुल वाली बुटी।

यह वार्षिक खरपतवार, पत्तिया 2–10 से0 मो चौडाई वाली अंडवत आकार, बल्लम जैसी एक दुसरे के विपरीत दिशा में चिपकी रहती है।

c) सेजुलिया क्जिलारिस :– सामान्य नाम – पिंक नोड फ्लावर।

जातीय नाम – थुजकर, घर फुले, मक्का, गठोला।

यह एक वर्षीय खरपतवार कम पानी वाले घान के खेत मे उगता है, चौडो पत्तो का, लम्बा बढने वाला तथा टेढ़े तने वाला खरपतवार है जो कई बार उगता है अगस्त से सितम्बर माह तक बीज बनाता ह। फूलो का रंग सफेद जिसमें

जामुनी रंग की झलक दिखाई पडती है। इसका प्रसार बीज से होता है कई बार यह खरपतवार फसल के आखिरी पखवाडे में पाया जाता है।

d) कोम्मेलिना डीफयुजा :– सामान्य नाम – क्लाइबिंग डे फलावर, जातीय नाम – केन, भगरिया, कनचारा।

यह चौडो पत्ती वाला एक वर्षीय खरपतवार जिसका तना चिकना, जड मिट्टी मे नीचे बढवार करती है, जिससे जमीन सुखने के बाद भी यह चटाई की तरह हरा होकर फैलता रहता है। फल तीन नीले पंखुडी वाले होते है। इसका प्रसार बीज एवं कटे हुऐ तना से होता है। यह सीधी बुवाई एवं रोपाई वाले खेतों मे होता है।

e) एजीरेटम कोन्जोएडेस :– गोट वोड। जातीय नाम – बोका, गंधिलि, सहेदवी ।

पहचान :– यह एक वर्षीय पौधा जिसके तने पर बाल और पत्तियाँ अण्डाकार, फूल सफेद या बैंगनी रंग का होता है। इसके बडे पौधा से बकरी की तरह दुर्गन्ध आती है यह उपरी क्षेत्रों में सीधी बुवाई वाले धान एवं गेहू की फसल में होता है।

f) काककोरस ओलीटोरियस :– समान्य नाम – नालटा जूट, जिउसमेलो जूट जातीय नाम – पट–साग, वनपट, परीता, मुगीपट।

पहचान :– यह एक वर्षीय चौड़ी पत्ती वाला, 2–3 मीटर तक ऊचाई, पत्ते एकान्तरित, सरल जिसकी एक पत्ती नुकीली टिप पर होती है। पत्तिया दातेदार, जिनके किनारे उभरे हुए होते है, फुल छोटे, 2–3 से0मी0 व्यास वाले, पीले व पाँच पंखुडी वाले होते है। यह पौधा सारे साल उगने की क्षमता रखता है।

g) सैजिटैरिया लाटिफोलिया :– सामान्य नाम – इंडियन पोटेरो, डक पीटेरो, जातीय नाम : पान पत्ता।

पहचान :–यह चौड़ी पत्ती वाला वहुवर्षीय खरपतवार है जो कि खेत में कॉलोनी बनाकर उगता है जड़ कमजोर व सफेद होती है तथा सफेद गांठे बनाती है।

इसमें तना नही होता है, पत्तिया गुच्छाकार, स्पंजी और ठोस होती है, पुष्पक्रम बडो व फूल तीन पंखुडियों से घिरा होती है, यह निचले खेती में अधिक होता ह।

h) <u>स्फेनोक्लीआ जेलानिका गेरटन</u> :– सामान्य नाम – चिकन स्पाईक,

जातीय नाम – मिर्च बुटी/मिर्ची।

पहचान : यह चौडो पत्ती वाला मिर्च के पौधे जैसा दिखाई देता है टहनी को बीच में से तोडने पर दूधिया पदार्थ निकलता है। पत्ते हरें, टहनियों पर विपरीत जुड़े होते है। फूल सफेद रंग तथा फूल के ऊपर हरे सफेद रंग की मिर्च जैसी डोडी लगती है। इसमें अगस्त स सितम्बर तक बीज बनते ह।

i) <u>अमनिया ग्रसिलिस</u> :– सामान्य नाम – लार्ज अमनिया, रेड अमनिया, पिंक अमनिया, जातीय नाम – गंठ जोड।

पहचान – यह गर्मी में होने वाला एक वर्षीय खरपतवार है। पौधा में सीधी बढवार, तने चौकोर, शाखाओं वाली पत्ती एकल व एक दूसरे के विपरीत होती है। यह पौधा आर्युवेदिक दवा के लिये उपयोगी है। अधिक नमी, वरसात वाले क्षेत्रों में इसका प्रकोप ज्यादा रहता है। मुख्यतः यह धान की फसल में देरी से होने वाला खरपतवार ह।

j) <u>मारसिलिया प्रजाति</u> :– यह बहुवर्षीय जलीय फर्न, चार पत्तियों वाला तिपतिसा घास जैसा दिखाइ देता है। यह अत्यधिक पानी, व नमी वाले क्षेत्रों में पनपता है। यह क्षेत्र के अनुसार अपने आप को ढाल लेता है। यह फसल की आखिरी अवस्था में पाया जाता है।

k) <u>फइसालिस मिनिमा</u> :– सामान्य नाम – गुजबेरी। जातीय नाम – बटकुइया, मकोई, पिलपोटन।

पहचान :– यह एक वर्षीय पोधा जिसकी उँचाई 100–150 से0 मी0 तक होती है, पत्ती के किनारे दाँतेदार होते है। फुलो का रंग दूधिया से पीले रंग जैसा

होता है एवं फल एक कागजी कवर से ढंका होता है जो पकने पर भूरे रंग का होकर जमीन पर गिर जाता है।

3. नरकट श्रेणी :–

a) साइप्रस इरिया एल :– सामान्य नाम फलैट सैज।

जातीय नाम – डिल्ला, बीज वाला मोथा, नगर मोथा, पानी वाला मोथा, अखावन।

पहचान :– एक वर्षीय पानी पसंद करने वाला 20–70 से0 मी0 लम्बा खरपतवार है, इसकी पत्ती लम्बी व फूल के नीचे लगी होती है तथा फूलो का रंग पीला होता है। धान की कटाई के समय इसके बीज धान के बीजो के साथ मिल जाते है।

b) साइप्रस रोटन्डस एल :– सामान्य नाम – छतरीनुमा छोटे फूल वाला, सैज

जातीय नाम – मोथा डिल्ला।

पहचान :– यह विश्व के सर्वाधिक हानिकारक खरपतवारो में शामिल बहुवर्षीय खरपतवार है। इसका तना सीधा बिना शाखाओं वाला चिकना व आधार से त्रिकाणीय होता है। पत्तिया लम्बी, सामान्यतः तने का ढककर रखने वाली, आगे से लाल भूरी होती है। तीन सहपत्तिया पुष्पक्रम की टहनियों के बराबर या उनसे लम्बी होती है। इसकी विशषता यह है कि इसका फैलाव जमीन मे पडे निष्क्रिय कंद द्वारा होता है। विपरित परिस्थितियों में सुषुप्ता अवस्थ में पड़ा रहता है उपयुक्त वातावरण होने पर उग जाता है। एलीलोपैथिक प्रभाव के कारण अन्य पौधो की जडो के लिए हानिकारक पदार्थ छोडता है।

c) फिमब्रिस्टाइलिस मिलिएसी एल. वाहल :– सामान्य नाम – फ्रिंगेस

जातीय नाम – झिकवा।

पहचान :– यह साधारणतयः नम मिट्टी में अधिकता से पाया जाने वाला एक वर्षीय खरपतवार है। इसकी बीज उत्पादन क्षमता 10000 प्रति पौधा के आस–पास होती है। यह खरीफ के मौसम में बीज से फैलता है।

d) स्कीरपस मैरिटिमस :– सामान्य नाम – पुलरा, हिरण घास, डीर ग्रास, जातीय नाम – बुचड़, डिल्ली।

पहचान :– यह मोथ की प्रजाति का बहुवर्षीय खरपतवार है जो कि धान के निचले इलाको में होता है। यह प्याज के पौधे के जैसा दिखाई देता है। एक मीटर तक बढ जाता है।

e) साइप्रस डिफोरमिस एल :– सामान्य नाम – छतरीनुमा छोटे फूल वाला सैज। जातीय नाम – नटधास, नागरमोथा, गाठ वाला मोथा, डिल्ला।

पहचान – यह निचले क्षेत्रों में पाया जाने वाला एवं वर्षीय खरपतवार है। यह पीले हरे रंग की 50–70 सेटीमीटर ऊँची, सीधी और गहन गुच्छो वाली घास जिसका तना 1–4 मि0मी0 मोटा व ऊपर सिर से त्रिकोणीय व लाल रंग का होता है। यह बीज के द्वारा फैलता है।

खरपतवार नियंत्रण के उपाय :–

गर्मी की जुताई :– खाली खेत की जुताई करने से मिट्टी में खरपतवारों के बीज का अनुपात घटता है, जिससे इसका अंकुरण कम होता है।

मेढ़ों की सफाई :– मेढ़ एवं खेत के किनारो पर खरपतवार उग आते है धीरे–धीरे बीज उत्पादन कर खेत में फैल जाते है अतः मेढ़ इत्यादि को भी साफ रखें।

फसल चक्र :– फसल चक्र एक महत्वपूर्ण विधि है जिसमें खरपतवारों की तीव्रता की प्रभावित किया जा सकता है। इसमे जुताई की विधि, बुवाई की विधि, फसलो की प्रजाति किस्म का चुनाव एवं पौधे रोपाई एव बुवाई भी महत्वपूर्ण कारक है जिससे खरपतवारों की वृद्धि एवं जनसंख्या को प्रभावित किया जा सकता है, अगर एक ही

प्रकार की फसल को लम्बे समय तक उगाया जाता है तो खास प्रजाति के पौधा को अपनी संख्या बढ़ाने का अवसर मिल जाता है।

जीरो टिलेज विधि (यन्त्र) से बुवाई :– इस विधि से मिट्टी की बिना जुताई किये ही फसल की बुवाई करते है, इसमें बीज की बचत एवं समय व श्रम की भी बचत होती है। इस विधि को अपनाने से पहले, ग्लाफोसेट (राउंड अप/ग्लाईसेल/प्रिप्रेयर) 5–10 मि0ली0 प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिडकाव करे। ध्यान रहे कि खेत में खरपतवारों का अंकुरण हो चुका है।

रासायनिक विधि से नियंत्रण :– साइप्रस रोटुनडस एल (मौथा) जैसे खरपतवार के लिए पायराजोसल्फुरोन 10 डब्लू0पी0 (साथी) 80 ग्राम, हेलो सुल्फुरोन 75 W.G. की 36 ग्राम/एकड़ (परमिट), अजिमसल्फुरोन 50 W.D.G. 24–28 ग्राम प्रति एकड़ बुवाई के 15–20 दिनों वाद या पायाराजोसल्फुरोन + बिसपायरिवैक (80 + 100 मिली प्रति एकड़) 150 लीटर पानी में घोल बनाकर बुवाई के 25–30 दिन बाद छिड़काव करें। अगर मिले जुले खरपतवार ह तो सीधी बुवाई वाले धान में प्रोपानिल + पेन्डिमैथालिन (1250 ली0 प्रति एकड़) का बिजाई के 10–12 दिन तक प्रयोग करें।

2. लेप्रोक्लोआ चाइनेनसिन्स (भोयली), इराग्रोस्टीस पाइलोसा एल, (चिडियो का दाना), डेक्टाइलोक्टीनियम अजीपटियम (मघाणा) ज्यादा है तो सीधी बुवाई के बाद पेन्डमैथालिन 30 ई0सी0 (स्टाम्प) 1.250 लीटर प्रति एकड़ 150 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। बुवाई के 10–12 दिन बाद प्रोपानिल + पेन्डिमैथालिन (1.25 लीटर प्रति एकड़)+ सेफनर (राइस स्टार) भी नियंत्रण कर सकते है। खेत में अधिक नमी होने पर पेन्डिमैथालिन का प्रयोग न करें क्योंकि यह उगते हुऐ धान को नुकसान पहुँचा सकती है।
3. चौड़ी पत्ती वाले एवं झाड़ीनुमा खरपतवारों के नियंत्रण हेतु अजिमसल्फुरोन 14–28 ग्राम, मेटसल्फुयरान + क्लोरीम्यूरान (एलमिक्स 20 धु0पा0) 8 ग्राम का घोल बनाकर व इसके साथ 0.2 प्रतिशत सरफेक्टेन्ट या 2–4 डी0 400 ग्राम

प्रति एकड़ रोपाई के 20–25 दिन बाद 140–150 लीटर पानी के साथ प्रति एकड़ छिड़काव करें।

4. निचल खेतो में चौड़ी पत्ती वाले अन्य खरपतवार जैसे पीले फूल वाली बूटी, गाठजोड़, केना, केसुरिया जंनका, बनपट, कोच, कोरकोरस इत्यादि होने पर बिसपायरिबैक, पायराजोसल्फुरोन (साथी) या हैलोसल्फुरोन (परमिट) या 2–4 डी का प्रयोग करने पर प्रभावी नियंत्रण होता है।

सलाह :–

1. खरपतवारनाशी का घोल बनाने के लिये प्रति एकड़ 150 लीटर पानी अवश्य ल।
2. मिले जुले खरपतवार होने पर विभिन्न शाकनाशियों का मिश्रण बनाकर प्रयोग करें।
3. फसल की प्रारम्भिक अवस्था में ही खरपतवार नाशी का प्रयोग करें।
4. साफ पानी को ही छिड़काव के लिये प्रयोग करें। इससे घोल समान रूप से निकलता है एवं स्प्रेपर का नोजल भी बन्द नहीं हो पाता।
5. छिड़काव के 3–4 घण्टे तक वर्षा न होने की संभावना हो क्योंकि प्रयोग करने के कुछ देर बाद ही वर्षा होने से खरपतवारनाशी का प्रभाव नही होता है।
6. कट नोजल का प्रयोग करने से दवा का छिड़काव समान रूप से होता है।
7. अनुशसित मात्रा के अनुसार ही दवा की मात्रा एवं पानी का मिश्रण बनाकर प्रयाग करें।
8. प्रत्येक वर्ष एक ही समूह के खरपतवार नाशी का प्रयोग न करें, क्योंकि खरपतारों में इसके प्रतिरोधकता आ जाती है।
9. उपयोग करने के उपरान्त खाले पैकिट एवं डिब्बों को नष्ट कर दे क्योंकि खुला छोड़ने से जानवारों एवं मनुष्यों के स्वास्थ को हानि पहुँचा सकते है।

10. खरपतवारनाशी खरीदने के पश्चात इस पर लिये निर्देशों को भली–भांति पढ़ ले। इसके निर्माण, पैंकिग तिथि एवं उपयोग होने की एक्सपायरी तिथि अवश्य ध्यान पूर्वक पढ़े क्योंकि पुराने/एक्सपायरी तिथि वाले खरपतवारनाशी की क्षमता अनावश्यक रूप से परिवर्तित हो जाती है। एवं इसके उपयोग करने पर फसल के जल जाने का खतरा रहता है।

11. खरपतवारनाशी का छिड़काव करने से पहले नाक एवं मुँह पर मास्क पहन ल एवं खाली पेट छिड़काव न करें।

12. आपातकाल मे नजदीकी स्वास्थ्य केन्द्र पर सम्पर्क करे तथा दवा की खाली पैकिट को भी चिकित्सक को दिखावें।

13. अधिक जानकारी के कृषि विज्ञान केन्द्र, कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विभाग एवं आत्मा के विशेषज्ञो से सलाह अवश्य लें।

गाजर घास (पार्थीनियम हिस्टेरोपोरस) व इसका प्रबन्ध

मंधाता सिंह, रामकेवल एवं विश्वेन्दु द्विवेदी,
कृषि विज्ञान केन्द्र, लालगंज, बक्सर

प्रकृति में गुणकारी जड़ी बूटियों के साथ–साथ हानिकारक घास भी उत्पन्न हो जाती है जो बाद में अभिशाप बन जाती है और इसम से एक अभिशाप है गाजर घास (पार्थीनियम)। पार्थीनियम को देश के विभिन्न भागों में गाजर घास, सिताराघास, चटक चांदनी, तीखी घास, रामफूल तथा डिस्को घास एवं कांग्रेस घास के नाम से भी जाना जाता है। गाजर घास का उत्पत्ति स्थल वेस्टइंडीज व ट्रोपिकल उत्तरी व दक्षिणी अमेरिका है तथा यह भारत के साथ–साथ अफ्रीका, चीन, वियतनाम, बांग्लादेश, नेपाल, अर्जेंटीना, व आस्ट्रेलिया समेत कई देशों मे भी फैल चुका है।

इतिहासः सन् 1954 में पी एल 480 समझौता के अंतगत अमेरिका से आयातित संकर गेहूँ के साथ पार्थीनियम का बीज भारत में आ गया। उस समय भारत में काग्रेस का कार्यकाल था इसलिए इसे काग्रेस घास भी कहते हैं। इसकी पत्ती गाजर जैसी होने के कारण इसे गाजर घास भी कहते हैं। परन्तु नाम के पीछे जो भी मत हो, आज भारत के लिए सिरदर्द बन गया है। भारत में सबसे पहले यह पूण में 1956 में देखा गया। परन्तु अब पूरे भारत में फैल चुका है।

वानस्पतिक विवरणः यह घास एस्टेरेसी कुल का एकवर्षाय शाकोय पौधा है इसका वानस्पतिक नाम पार्थीनियम हिस्टेरोफोरस है। यह अतिशीध्रता से बढ़ने वाला एक खरपतवार है जिसकी उचाई आधा मीटर से दो मीटर तक पायी जाती है। इसमें उगने के 5–8 सप्ताह के अन्दर फूल आना शुरु हो जाता है तथा वर्ष भर पूष्ण होता है। यह सभी प्रकार की मिट्टीयों में तथा बालू में भी फैलता है। इसका जीवन चक्र सामान्यतः 3–4 माह का होता है परन्तु उपयुक्त वातावरण में पूरे वर्ष भर बढ़ता तथा पुष्पित होता है।

हानिकारक प्रभावः तने पर रोएं पाये जाते ह जो तेज हवा के चलन पर आपस में रगडकर उडते ह जो मनुष्य के त्वचा एवं श्वास के लिए हानिकारक होते ह तथा एलर्जी पैदा करते ह। एलर्जी का मुख्य कारण तने एवं पत्तियों में पाया जाने वाला पाथीनोन नामक रसायन होता है। इसके फूल के पराग हवा में उड़कर त्वचा के अन्दर प्रवेश करके जलन व खूजली पैदा करते ह। पार्थीनियम के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने पर मनुष्य के चेहरे, बाहों एवं गर्दन की त्वचा सख्त हो कर फटने लगती है तथा घाव बन जाता है। इसे पशु नही खाते है क्योकि पार्थीनियम चारा परिवार का घास नही है। यदि पशु खाते ह तो उनमें रोग फैलता ह तथा दूध भी कड़वा हो जाता है। इसकी जड़ में पाया जाने वाला इक्यूडेर नामक रसायन आसपास की मिट्टी में तथा जल द्वारा दूर–दूर तक फैल जाता है जो अन्य वनस्पतियों के अंकुरण एवं विकास में रुकावट पैदा करता है। यह दलहनी फसलों की जड़ग्रन्थि के विकास को रोकता है तथा मिट्टी मे पाये जाने वाले नत्रजन स्थिरीकारक जीवाणु की क्षमता को भी प्रभावित करता है। इसके झाड़ियों का तापमान अधिक होता है तथा इससे भूक्षरण बढता है अतः इसे धरती का कैसर भी कहा जाने लगा है। इसके बीज हवा, पानी एवं मिट्टी द्वारा दूर–दूर तक फैल जाते ह तथा मिट्टी की सतह पर कई वर्ष तक जीवित रहते ह यह सड़क मार्गो, परती जमीन, चारागाहा में तेजी से फैलता है। यदि मिट्टी में नमी हो तो फूला से झडने के तुरन्त बाद ही बीज अंकुरित हो जाता है।

कैसे पाएं इस पर काबूः– इसके नियंत्रण के लिए सामूहिक रुप से प्रयास करने की आवश्यकता है क्याकि खेत में रासायनिक खरपतवारनाशी द्वारा समाप्त कर देने के बाद भी सड़क के किनारे, परती जमीन, खुला मैदान, चारागाह आदि से पूरे खेत में आ जाता है अतः नियंत्रण के कुछ उपाय इस प्रकार ह।

1. नम भूमि में इस खरपतवार को फूल आने से पहले हाथ से उखाड़कर इकट्ठा करके जला देने से काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है। इसे उखाड़ते समय हाथ में दस्ताना तथा सुरक्षात्मक

कपड़ो का प्रयोग करना चाहिए। चूंकि गाजर घास एक व्यक्ति की समस्या न होकर जन साधारण की समस्या है अतः पार्को, कालोनी, गावो में रहने वाले सभी लोगों को समूह बनाकर इसे उखाड़ कर नष्ट करना चाहिए।

2. जैविक नियंत्रण के रुप में मैक्सिकन वीटिल (जाइगोग्रामा वाइकोलोराटा) नामक वीटिल, जो केवल गाजर घास को ही खाता है, को बढावा द। इस वीटिल का वयस्क एवं ग्रव दोना ही पार्थीनियम की पत्तियों को बड चाव से खाकर नष्ट कर देते है। प्रयोग गाजर घास ग्रसित स्थानों पर छोड़ देना चाहिए इस कीट के लगातार आक्रमण के कारण धीरे–धीरे गाजर घास कम हो जाती है जिससे वहा अन्य वनस्पतियों को उगने का मौका मिल जाता है।
3. इसके पौधो का सीधे हाथ से न छूए तथा उखाडते समय खूरपी या अन्य यंत्र का प्रयोग करें। उखाडते समय पौधे का कोई भी भाग शेष न रहे। इसके पौधे को उपर से न काटे अन्यथा इसके बीज और अधिक फैलते हैं।
4. खरपतवारों के प्रवेश एवं उनके फैलाव को रोकने हेतु नगर व राज्य स्तर पर कानून बनाकर उचित दंड का प्रावधान रख इस पर काफी हद तक काबू पाया जा सकता है।

रासायनिक नियंत्रणः–

1. एट्राजिन, एलाक्लोर, डाइयूरान, मेट्रीव्यूजीन 2,4–डी, ग्लाइफोसेट आदि शाकनाशियों के प्रयोग से इस खरपतवार का नियंत्रण आसानी से किया जा सकता है।
2. गाजर घास के साथ सभी प्रकार की वनस्पत्तियों को नष्ट करने के लिए ग्लाइफोसेट 2.0 किग्रा/हे का प्रयोग करना चाहिए। अन्य वनस्पतियों को बचाते हुए केवल गाजर घास को नष्ट करने के लिए मेटोव्यजीन 0.5 से 0.75 किग्रा/हे. का प्रयोग करना चाहिए।
3. प्रतिस्पर्धी वनस्पतिया जैसे– चकौड़, हिप्टिस, जगंली चौलाई आदि से गाजर घास को आसानी से विस्थापित किया जा सकता है। अक्टूबर माह में चकौड का बीज इकट्ठा कर उस अप्रैल–मई में गाजर घास से ग्रसित स्थानों पर बिखेर देना चाहिए। वर्षा होने पर शीघ्र ही वहा चकौड गाजर घास को विस्थापित कर देती है।

संभव उपयोगः– गाजर घास के पौधे के लुगदी से हस्तनिर्मित कागज एवं कम्पोजिट तैयार किये जा सकते ह। वायोगैस उत्पादन में इसका गोबर के साथ मिलाया जा सकता है। इसका प्रयोग ईधन के रुप में भी किया जा सकता है। किसान भाई इसका उपयोग कम्पोस्ट बनाने में कर सकते हैं। जिसमें नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटैशियम गोबर की खाद से ज्यादा होता है।

जैविक खेती

सुरजीत मंडल, अकरम अहमद, राकेश कुमार, प्रेम कुमार सुंदरम, संतोष कुमार

जैविक खेती एक ऐसी प्रणाली है जो सिंथेटिक इनपुट्स, जैसे कि उर्वरक, कीटनाशक, हार्मोन, फीड एडिटिव्स आदिद्ध के उपयोग नहीं करते है और जैव विविधताए, जैविक चक्र और मिट्टी की जैविक गतिविधि सहित कृषि पारिस्थितिकी तंत्र को बढ़ावा देती है। यह सभी सिंथेटिक ऑफ.फार्म इनपुट के बहिष्करण तथा कृषि, जैविक और यांत्रिक तरीकों का उपयोग करके पूरा किया जाता है।

जैविक खेती की जरूरत

जनसंख्या में वृद्धि के साथ हमारी मजबूरी न केवल कृषि उत्पादन को स्थिर करनी होगी, बल्कि इसे स्थायी रूप से बढ़ाना होगा। वैज्ञानिकों ने महसस किया है कि उच्च इनपुट उपयोग के साथ हरित क्रांति एक पठार तक पहुंच गई है और अब उत्पादन कम हो रहा है। इस प्रकार एक प्राकृतिक संतुलन को हर कीमत पर बनाय रखने की जरूरत है।

जैविक खेती के सिद्धांत

स्वास्थ का सिद्धांतरू जैविक कृषि को मिट्टी, पौधे, पशु मानव और ग्रह के स्वास्थ्य को एक और अविभाज्य बनाय रखना चाहिए। यह सिद्धांत बताता है कि व्यक्तियों और समुदायों के स्वास्थ्य को पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य से अलग नहीं किया जा सकता है स्वस्थ मिट्टी स्वस्थ फसलों को उत्पादन करती है जो जानवरों और लोगों के स्वास्थ्य को बढ़ावा देती है।

पारिस्थितिकी के सिद्धांतरू जैविक कृषि जीवित पारिस्थितिक प्रणालियों और चक्रों पर आधारित होनी चाहिए उनके साथ काम करें उनका अनुकरण करें और उन्हें बनाय रखने में मदद करें। यह बताता है कि उत्पादन पारिस्थितक प्रक्रियाओं और रीसाइक्लिंग पर आधारित होना है। विशिष्ट उत्पादन वातावरण की पारिस्थितिकी के माध्यम से पोषण और भलाई प्राप्त की जाती है।

निष्पक्षता क सिद्धांतरू जैविक कृषि को उन रिश्तों पर निर्माण करना चाहिए जो सामान्य पर्यावरण और जीवन के अवसरों के संबंध में निष्पक्षता सुनिश्चित करते हैं। जैविक कृषि में सभी को जीवन की अच्छी गुणवत्ता के साथ शामिल होना चाहिए और खाद्य संप्रभुता और गरीबी को कम करने में योगदान करना चाहिए। इसका उद्देश्य अच्छी गुणवत्ता वाले भोजन और अन्य उत्पादों की पर्याप्त आपूर्ति करना है।

देखभाल के सिद्धांतरू वर्तमान भविष्य की पीढियों और पर्यावरण की स्वास्थ्य और भलाई की रक्षा के लिए जैविक कृषि को एक एहतियाती और जिम्मेदार तरीके से प्रबंधित किया जाना चाहिए। जैविक कृषि के अभ्यासी दक्षता को बढ़ा सकते हैं और उत्पादकता बढ़ा सकते हैं। लेकिन यह स्वास्थ्य और कल्याण को खतरे में डालने का जोखिम नहीं होना

चाहिए। नतीजनत नई प्रौद्योगिकियों का मूल्यांकन करने की आवश्यकता है और मौजदा तरीकों की समीक्षा की गई है।

जैविक खेती की विधि

जैविक खेती के तरीके पारिस्थितिकी के वैज्ञानिक ज्ञान और कुछ आधुनिक तकनीक के साथ पांरपरिक खेती के तरीका के साथ स्वाभाविक रूप से होनी वाली जैविक प्रक्रियाओं पर आधारित हैं। कृषि विज्ञान के क्षेत्र में जैविक खेती के तरीकों का अध्ययन किया जाता है। प्राकृतिक कीटनाशकों और उर्वरकों का उपयोग करने के लिए जैविक किसानों को नियमों द्वारा प्रतिबंधित किया गया है। जैविक खेती के प्रमुख तरीकों में फसल चक्रण हरी खाद और जैविक खाद जैविक कीट नियंत्रण और यांत्रिक खेती भाामिल हैं। ये उपाय कृषि उत्पादकत्ता को बढ़ाने के लिए प्राकृतिक वातावरण का उपयोग करते हैं मिट्टी में नाइट्रोजन को ठीक करने के लिए फलियां लगाई जाती हैं। प्राकृतिक कीट शिकारियों को प्रोत्साहित किया जाता है फसलों को कीटों को भ्रमित करने और मिट्टी को नवीनीकृत करने के लिए घुमाया जाता है

- जविक खेती से फसल विविधीकरण को बढ़ावा मिलती है। विभिन्न प्रकार की फसलों को लगाने से लाभकारी कीटों मृदा सूक्ष्मजीवों और अन्य कारकों का व्यापक स्तर पर समर्थन होता है जो समग्र कृषि स्वास्थ को जोड़ते हैं।
- हरी खाद और खाद जैसी तकनीकों का उपयोग करके जैविक खेती जैविक पदार्थों के प्राकृतिक विघटन पर बहुत निर्भर करती है। जैविक खेती मिट्टी की उर्वरता को बेहतर बनाने के लिए कई तरह के तरीकों का उपयोग करती है जिसमें फसल का घुमाव कवर फसल कम जताई और खाद का अनुप्रयोग शामिल हैं।
- जुताई को कम करने से मिट्टी उलटी नहीं होती है और हवा के संपर्क में नहीं आती है कम कार्बन वातावरण में खो जाता है जिसके परिणामस्वरूप अधिक मिट्टी कार्बनिक कार्बन होती है। इससे कार्बन सीक्वेस्ट्रेशन का अतिरिक्त लाभ होता है जो ग्रीनहाउस गैसों को कम कर सकता है और जलवायु परिवर्तन को उलट सकता है।
- जैविक खरपतवार प्रबंधन खरपतवार उन्मूलन के बजाय खरपतवार उन्मूलन को बढ़ावा देता है जिससे खरपतवारों पर फसल प्रतिस्पर्धा और फाइटोटॉक्सिक प्रभाव में वृद्धि होती है। जैविक किसानों ने बिना सिंथेटिक जड़ी बूटियों के खरपतवारों के प्रबंधन के लिए सांस्कृतिक जैविक यांत्रिक भौतिक और रासयनिक रणनीति को एकीकृत किया हैं।
- यह नर्सरी पौधों और या एक वैकल्पिक निवास स्थान की सेवा करके कोटों को नियंत्रित करने के लिए शिकारी लाभकारी कीटों को प्रोत्साहित करता है आमतौर पर एक आश्रय हेजेरो या बीटल बैंक के रूप में
- लाभकारी सूक्ष्मजीवों को प्रोत्साहित करना

- यह कीट प्रजनन चक्रों को बाधित करने के लिए साल दर साल विभिन्न फसलों के रोटेशन को बढ़ावा देता है।
- साथी फसलों और कीट प्रजनन वाले पौधों को रोपण करना जो कीटों को हतोत्साहित या मोड़ते है।
- जैविक कीटनाशकों और हर्बिसाइड्स का उपयोग करना।
- पौधे लगाने से पहले खरपतवारों को अंकुरित करने और नष्ट करने के लिए बासी बीज बेड का उपयोग करना।
- कीट निवास स्थान को हटाने के लिए स्वच्छता का उपयोग करना।
- कीट आबादी की निगरानी और नियंत्रण के लिए कीट जाल का उपयोग करना।

जैविक कृषि **के लाभ**

- ❖ स्थानीय जैव विविधता पर आधारित बड़े पैमाने पर किफायती आदानें के उपयोग के माध्यम से लंबे समय में पैदावार बढ़ाना।
- ❖ मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों को वापस करके और जैविक रूप सक्रिय ह्यूमस कॉम्पलेक्स का समर्थन करने वाली प्रथाओं का चयन करके मिट्टी के कार्बनिक पदार्थों को बढ़ाना।
- ❖ कार्बनिक पदार्थों के खनिज से पोशक तत्वों की रिहाई का समय उस समय के साथ मेल खाना जब पौधे सक्रिय रूप से बढ़ रहे हैं और पाषक तत्व ले रहे हैं
- ❖ नाइट्रेजन स्थिरीकरण के लिए फसल के चक्र का उपयोग करना आर मिट्टी की प्रोफाइल से पोशक तत्वों को पुनः चक्रित करना जड़ विकास के माध्यम से मिट्टी का झुकाव बढाना और फसल के अवशेषों की विविधता प्रदान करना।
- ❖ खेत में फसलों में विविधता लाना मिट्टी की उर्तरता बढ़ाना पोषक तत्वों के उपयोग की क्षमता बढ़ाने और कीट दबाब को कम करने के लिए इंटरक्रोपिंग प्रथाओं का उपयोग करना।
- ❖ श्रोपण फसलों को पकड़ते हैं और पोषक तत्वों कों पुनर्प्राप्त करने के लिए फसलों को कवर करते हैं जो अन्यथा उपेक्षत्र में लीच कर सकते हैं।
- ❖ संरक्षण प्रथाओं का उपयोग करना जो पानी के अपवाह और पंख और पानी के क्षरण की क्षमता को कम करते हैं।
- ❖ झीलों और नदियों मे पोषक तत्वों और तलछट की गति से बचाने के लिए फसल क्षेत्रों और जल निकायों के बीच बफर या फिल्टर क्षेत्रों को प्रदान करना।
- ❖ पोषक तत्वों के उत्थान को बढ़ाने पोषक तत्वों की लीचिंग को कम करने और जड़ और स्टेम रोगों को कम करने के लिए सिंचाई प्रथाओं का प्रबंधन और निगरानी करना

- सांस्कृतिक प्रथाओं के माध्यम से कीट आबादी को नियंत्रित करना कीट परभक्षी संतुलन को बढ़ाना और लाभकारी कीड़ों मछलियों पक्षियों और स्तनधारियों के लिए कम विषाक्तता वाले बायोडिग्रेडेबल कीटनाशकों का उपयोग।
- ऑर्गेनिक खेती नाइट्रोजन प्रदूशण को कम करती है।
- पारंपरिक खेती की तुलना में दी गई उपज के लिए कम ऊर्जा का उपयोग करता है।
- जैविक खेती मिट्टी में अधिक कार्बन का भंडारण करती है इस प्रकार कार्बन काइऑक्साइड उत्सर्जन को बंद कर देती है।
- भारी कीटनाशक से बचा जाता है और शाकनाशी पारंपरिक खेती का उपयोग करते है।
- स्थानीय रूप से उपलब्ध नवीकरणीय संसाधनों के साथ महंगे रासयनिक आदानों को बदलकर वित्तीय जोखिम को कम करना।
- पंरपरिक कृषि प्रथाओं को एकीकृत करना।
- किसानों को नए बाजार के अवसरों तक पहुंच प्रदान करना।

फसलों में खरपतवार का यांत्रिक एवम् जैविक विधियों द्वारा नियंत्रण

रवि कान्त चौब[1], सुमित कुमार[2] सिंह डॉ0 अंजनी कुमार[3], डॉ0 उज्जवल कुमार[4],

विषय वस्तु विशेषज्ञ[1], कृषि विज्ञान केंद्र, नवादा; वरीय शोधकर्ता[2], निदेशक[3] आई.सी.ए. आर– अटारी जोन–4; प्रधान वैज्ञानिक[4], आई.सी.ए.आर–आर.सी.ई.आर, पटना।

आज के परिवेश में भारतीय किसानों के लिए खरपतवार नियंतण एक जटिल समस्या है। एक ओर जहाँ खरपतवार नियंत्रण द्वारा कृषि लागत में वृद्वि होती है वही दूसरी ओर इससे फसल उत्पादन एवं लाभ में कमी आती है। खरपतवार मुख्य फसलों से पोषक तत्वो, जल, स्थान एवं प्रकाश के लिए प्रतिस्पर्धा करती है। खरपतवार फसलों को प्राप्त होने वाले 47% नत्तजन, 42% फास्फोरस, 50% पोटाश, 39% कैल्सियम, और 24% मैगनीशियम, का उपयोग कर लेते है। खरपतवार द्वारा विभिन्न फसलों में 12–72% तक उपज कम कर देती है। फसलों एवं खरपतवारों के बीच प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवधि होती हैः–

तालिकाः– फसलों में खरपतवार की प्रतिस्पर्धा की क्रांतिक अवस्थाएं

क0 सं0	फसलों के नाम	क्रांतिक अवस्थाएं (दिन–बुवाई के बाद)
1	धान	15–45
2	गेहूँ	30–45
3	मक्का	15–45
4	सोयबिन	15–45
5	उरद	30–45
6	गन्ना	30–120
7	कपास	15–60
8	मुँगफली	30–50
9	सूर्यमुखी	30–45

अतः उत्पादन बढाने के लिए खरपतवार का नियंत्रण करना आवश्यक है। कृषि कार्यो में खरपतवार का नियंत्रण एक कठिन एवं जटिल कार्य माना जाता है। कृषकों द्वारा की जाने वाली पारम्परिक विधि द्वारा खेती में खरपतवार का नियंत्रण महंगी साबित हो रही है। इसका मुख्य कारण है– बढ़ती मजदूरी की दरे एवं श्रमिको का अभाव। हमारे देश के कई प्रगतिशील किसान खरपतवारों को रोकने के लिए महंगे रासायनिक खरपतवारनाशी का प्रयोग करते है जिससे उत्पादित वस्तु मिट्टी एवं वातावरण पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अतः अब आवश्यकता है कि सीमित संसाधनों में ही कम खर्च करके खरपतवारों को फसलों वाले खेतों में उगने से रोका जाए।

खरपतवारों को नियंत्रित करने के लिए रासायनिक खरपतवारनाशी के उपयोग के अलावा भी कुछ प्रमुख जैविक एवं यांत्रिक विधियाँ है जिनका उपयोग करके होने वाले रासायनिक के बुरे प्रभावों से बचा जा सकता है।

यांत्रिक विधियाँः–

1.) ग्रीष्मकालीन गहरी जुताईः– रबी फसल की कटाई के बाद खेत को मिट्टी पलटपे वाले हल द्वारा गहरी जुताई करने से खरपतवार के बीज, कीड़ो के अण्डे इत्यादि अधिक तापमान के कारण नष्ट हो जाते है और पक्षी भी खरपतवारों के बीज को खा जाते है।

2.) स्टेलसीड बेड तकनीकः– इसमें खेत की पिछली फसल कटाई करने के बाद तथा अगली फसल बोने के पहले एक निराई करते ह, इससे खरपतवार के बीज अकुरित होकर बाहर आ जाते है फिर उन्हे खेत की तैयारी के समय जुताई करके खेत से बाहर निकाल देते ह। इस तरह से खरपतवार के संख्या काफी हद तक कम हो जाती है।

3.) टपकेदार सिंचाई का प्रयोगः– उन खेतो में जिसमें बागवानी या फलदार पेड़ या सब्जी उगायी जाती है वहाँ टपकेदार सिंचाई का प्रयोग करना चाहिए। इससे जल पौधों के आस–पास भूमि में ही रहता है। इस विधि द्वारा पानी के संरक्षण के साथ–साथ खरपतवारो के लिए जल उपलब्धता को सीमित कर देते है और इसके प्रभाव से खरपतवारों के बीजों का अंकुरण रूक जाता है।

4.) फसल चक अपनाकरः– जब हम एक निश्चित भूमि पर एक निश्चित अवधि में फसलों को क्रमिक खेती या निश्चित क्रम में फसलों बुवाई करते ह तो इसे फसल चक्र कहते है। फसलों को अदल–बदल कर उगाया जाता है जिससे खरपतवारों को उगने के लिए अनुकूल वातावरण नही मिल पाता है। इस प्रकार खरपतवारों की संख्या एवं प्रजाति में काफी हेरफेर किया जा सकता है। फसल चक्र में अधिक वानस्पतिक वृद्वि वाले फसलों को शामिल करके खरपतवारों की संख्या को कम किया जा सकता है कुछ खरपतवारों कुछ खास फसल के साथ ही आती है। अतः फसल चक्र में दूसरी फसलों को लेने से काफी हद तक नियंत्रण किया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर गेहूँ का मुख्य खरपतवार गुल्ली–डंडा (फेलेरिस माईनर) है। यदि धान– गेहूँ, अरहा– गेहूँ कपास– गेहूँ के फसल चक्र को धान–सरसा, धान–आलू, धान–मसूर, धान–चना आदि में बदल दिया जाए तो इस खरपतवार की संख्या को काफी हद तक नियंत्रित किया जा सकता है।

5.) यांत्रिक विधि द्वाराः– खरपतवारों का यांत्रिक विधि द्वारा नियंत्रण काफी प्रभावी होता है। मनुष्य, पशु एवं ट्रेक्टर चालित निराई यंत्रों का प्रयोग करके खरपतवार को नियंत्रित किया जाता है। मनुष्य या जनशक्ति चलित निराई यंत्र जैसें खुरपी निंदाई, हुक फावड़ा गैंती, खींचे जानेवाली हो डचहो पुशू पुल वीडंर स्वींश हो, हस्त कल्टी वेटर, व्हील हो, धान का बेलनाकार निराई यंत्र आदि का प्रयोग अधिक प्रभावी दंग से किया जा सकता है।

पशु व टक्टर द्वारा चालित यंत्रः– स्वीप कल्टीवेटर, जापानी पावर वीडर डकफुट कल्टीवेटर, तीन फांल वाला हो इत्यादि प्रमुख है।

6.) जीरो टिलेज का उपयोगः– इस प्रक्रिया में खेतों में पिछली फसल की कटाई के बाद आने वाली फसल के बीज बिना जुताई किए ही ट्रैक्टर चलित जीरो टिलड्रील से बिजाई की जाती है। इससे जमीन में कम जुताई होती है तथा खरपतवारों का उगना कम हो जाता है। इस विधि का उपयोग मुख्य रूप से उन क्षेत्रों में किया जाता है जहां धान के बाद गेहूँ की फसल ली जाती है। धान की फसल के बाद जीरो टिलड्रिल से गेह की बिजाइ करने से गुल्ली डंडा (फेलेरिस माईनर) जौसे खरपतवार का प्रकोप कम होता है।

7.) सीड बेड प्लांटर/फर्ब्स सीउड्रिलः– यह एक ऐसी तकनीक है जिसमें फसलों की खेती उठी हुई क्यारियों में जाती है। इससे पानी की बचत के साथ साथ खरपतवारों से भी काफी हद तक निजात मिलता है। इस तकनीक से मुख्य रूप से सब्जियों की खेती में की जाती है। लेकिन अब फर्ब्स सीडड्रिल की उपलब्धता के कारण दलहनी, मिहनी एवं खाद्यान फसलों की खेती करना आसान हो गया है। इसमें पौधों की बढ़वार की वजह से खरपतवार का प्रकोप कम होता है।

8.) अंतवर्तीय फसलः– इस विधि में दो या तीन फसलों को एक साथ बोया जाता है जो खरपतवार की बढ़वार को रोकने में सहायक होती है जैसे गेहूँ के साथ मटर, चना या मसूर तथा मक्का के साथ मूंग फसल बोई जा सकती है।

9.) बिजाई का समयः– बिजाई के समय एवं तरीके में बदलाव करने से भी खरपतवार की संख्या को कम किया जा सकता है। बिजाई के समय को 10–15 दिन आगे या पीछे करने से खरपतवार में कमी आती है। जैसे गेहूँ को 15 दिन अंगेती करने से गुल्ली डंडा (फेलेरिस माईनर) की संख्या कम की जा सकती है। इसी तरह फसलों के कतार के बीच की दूरी कम करने से भी खरपतवार की संख्या कम कर सकते है।

10.) बिछावन (मल्चिंग) :– इस प्रक्रिया में खेत की सतह पर पुआल, भूसा पेड़ों की पत्तियां या प्लास्टिक शीट को बिछावन की तरह फैलाया जाता है। यह बिछावन खरपतवारों के अंकुरण को रोकता है तथा इसकी संख्या को कम करता है।

11.) पोषक तत्वों का प्रबंधनः– खेतों में मुख्य फसल एवं खरपतवार साथ–साथ पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं। नत्रजन वाले पोषक तत्वों की मात्रा अधिक हो तो खरपतवार की अधिकता देखी जा सकती है। अतः पोषक तत्वों की मात्रा मृदा परीक्षण के आधार पर उपयोग की जानी चाहिए। हरी खाद का उपयोग करने से यह न केवल खेतों में पोषक तत्व प्रदान करता है बल्कि जुताई के समय खरपतवारों की संख्या में भी कमी आती है। उराहरणार्थ यदि धान की फसल को रोपणी के एक–दो दिन पूर्व ढचा की हरी खाद को खेतों में दबाने से लगभग 70–80 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की बचत होती है तथा खरपतवारों की संख्या में भी काफी कमी पायी जाती है।

12.) मृदा सूर्यीकरणः– मृदा में उपस्थित खरपतवारों के बीज एवं हानिकारक सूक्ष्म जीवों के नियंत्रण के लिए मृदा सूर्यीकरण तकनीक काफी कारगर पाया गया है। इस तकनीक में ग्रीष्म काल के मई–जून महीने में सिंचाई के बाद मिट्टी की उपरी सतह पर पारदर्शी पॉलीइथाईलीन की शीट बिछा दी जाती है तथा पालीथीन के किनारे को मिट्टी से अच्छी तरह दबा देते हैं। इससे मिट्टी

से अवशोषित एवं संचयित ताप बाहर नहीं निकल पाती है और खेत की सतह का तापमान बाहर की अपेक्षा 8–12 सेंटीग्रेड ज्यादा होती खरपतवार क प्रकोप अपेक्षाकृत कम होता है। एक अध्ययन द्वारा यह पाया गया है कि मृदा सुर्यीकरण से 4–6 सप्ताह में अधिकांश खरपतवारों का पूर्ण नियंत्रण हो जाता है। परंतु कुछ खरपतवार जैसे दूबघास, नागर मोथा या कांस जिसका प्रजनन कंद या तने की गांठ से होता है और सैंजी एवं हिरण खुरी जिसके बीज का आवरण सख्त होता है परतु सर्यीकरण का प्रभाव कम पड़ता है।

13.) जैविक नियंत्रणः— खरपतवारों का जैविक विधि द्वारा नियंत्रण करने में जीवाणु, कीट, पशु एवं पौधों का उपयोग किया जाता है।

मैक्सीकन बीटनः—यह बीटल जायग्रोग्रामा बायोक्लोराटा गाजर घास को नियंत्रित करता है। वर्षा के मौसम में यह कीट गाजर घास को खाकर खत्म कर देता है। इसी तरह नयू केटीना बुकाई नामक कीट भी खरपतवार को खाकर नाष्ट कर देता है।

एजोला :— इसे ताजे पानी का फर्न कहा जाता है। यक पानी में तैरता हुआ एक जलीय खरपतवार है जो धान के खेत में दूसरे खरपतवारों का नियंत्रण करता है। ताजे एजोला को 0.50 कि.ग्रा. प्रति वर्ग मीटर की दर से धान के खेत में छोड़ दिया जाता है। जो दूसरे खरपतवारों को उगने नहीं देता है।

ग्रास कार्पः— चीनी ग्रास कार्प (टीनोफेरिंगोडान इडेला) एक मछली है जो जलीय खरपतवारों को नियंत्रित करता है। यह मछली एक दिन में अपने शरीर के वजन के दोगुने हरी घासों को खा जाती है। इसका वनज 1 कि.ग्रा. से 30 कि.ग्रा. तक होता है यह मुख्य रूप से हाइड्रिला घास को खाकर नष्ट करती है। एक हेक्टेयर खरपतवार के लिए 100 मछलियां पर्याप्त होता है।

सिल्वर कार्पः— सिल्वर कार्प (हाइपोफ्लेल्यिथिस मोलिट्रिक्स) भी एक मछली है जो छोटे—छोटे खरपतवारों जैसे एल्गी तथा दूसरे छोटे—छोटे तैरते घासों को खाती है। इसका वजन 1 से 15 कि.ग्रा. तक की होती है। एक हेक्टेयर में 700 मछलियां खरपतवारों को नियंत्रण करती है।

टिलापियाः— अन्य मछलियों में टिलापिया (टिलापिया मोजेम्बिका) प्रजाति की मछली भी खरपतवार नियंत्रण में सहायक है। यह मछली 0.5 से 1 कि.ग्रा. तक की होती है यह रेशेदार एल्गी, लाल एल्गी मच्छर के लार्वा, छोटे कीटों तथा छोटी मछलियों को खाता है।

खरपतवार नियंत्रण में ध्यान देने योग्य मुख्य सावधानियाँ

- साफ एवं खरपतवार रहित फसलों के बीज का उपयोग करें।
- गोबर की खाद अच्छो तरह सड़ी—गली होनी चाहिए जिससे खाद में पड़ खरपतवारों के बीजों की अंकुरण क्षमता कम हो।
- खेत की सड़कों, मेड़ों एव नाली में खरपतवार को न उगने दें। उगे हुए खरपतवार को नष्ट कर दें।
- ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई अवश्य करें।
- हरी खाद का उपयोग करें।
- खरपतवारों के बीज नहीं बनने से पहले ही खरपतवार नष्ट कर दें।
- खेत में पौधों की संख्या उचित होनी चाहिए।
- खाद को फसल की जड़ से 1—2 ईंच गहराई में डालें।
- यांत्रिक विधि द्वारा खरपतवारों को नियंत्रित करें।
- फसल चक्र जरूर अपनाएं।
- कटाई एवं गहाई के समय खरपतवारों के पौधों को फसल से अलग कर नष्ट कर दें।
- मृदा सूर्याकरण का प्रयोग नर्सरी एवं अधिक मूल्य वाली फसलों में करें।

जीरो टिलेज मशीन का बीज एवं उर्वरक दर निर्धारण

प्रेम कुमार सुन्दरम[1], बिकास सरकार[1], संजय कुमार पटेल[2], राकेश कुमार[1] एवं पवन जीत[1]

[1] भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना, बिहार

2डॉ राजेंद्र प्रसाद केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, पूसा, समस्तीपुर, बिहार, भारत

कृषि यांत्रिकरण के विकास के कम में बुआई से संबंधित मशीनों में जीरो–टिल सीड–कम–फर्टिलाइज़र ड्रिल एक बहुत ही उपयोगी यन्त्र है। इस यन्त्र को बिना जुताई खाद, बीज बुआई यन्त्र से भी जाना जाता है। इस यन्त्र के द्वारा बीज तथा खाद फसलों के आवश्यकतानुसार बराबर दूरी तथा कम मात्र में डाला जाता है। इस मशीन का मुख्य उपयोग धान काटने के पश्चात् बिना जुताई के बीज तथा खाद बोने के लिए किया जाता है। शून्य जुताई विधि में जुताई एवं बीज के रोपण के लिए केवल एक बार ट्रैक्टर चलाने की आवश्यकता होती है। शून्य जुताईमशीन से समय की बचत के साथ साथ मिट्ट्री, ईधन, ट्रैक्टर की लागत, पानी, उर्वरक और कीटनाशककी भी बचत होती है। इस मशीन के प्रयोग से परंपरागतविधि की तुलना में मृदा कठोरता (कॉम्पैसान) कम होती है। एवं फसल समय से तैयार हो जाती है जिससे अगलो फसल की बुआई उचित समय से हो जाती है। इस विधि से लागत को कम करके पैदावार को बढ़ाया जा सकता है।

शून्य **जुताई–बीज–सह–उर्वरक ड्रिल(जीरो–टिल सीड–कम–फर्टिलाइजर ड्रिल)**

शून्य जुताई–बीज–सह–उर्वरक ड्रिल किसानों के लिए एक बहुत ही उपयोगी और महत्वपूर्ण कृशि मशोन है। उन्हें मिट्टी से छेड़ छाड़ किए बिना पिछली फसल की कटाई के बाद सीधे बीज डालने में मदद करता है। इस मशीन के प्रयोग से फसल की पैदावार और किसानों के मुनाफे में सुधार के अलावा गेहुं में फलेरिस माइनर जैसे खर पतवार के जोखिम को कम किया जा सकता है। भाून्य जुताई–बीज–सह–उर्वरक ड्रिल कई मॉडल और आकारों में आता है। इन मशीनों के फाले अंग्रेजी के उल्टे "टी" के समान होता है जिसके द्वारा भूमि में केवल एक पतली सी नाली बन जाती है। इन पतली नालियों में 5–7 से0 मी0 की गहराई पर खाद तथा बीज स्वयं ही मशीन द्वारा पड़ता रहता है। इस मशीन द्वारा धान, गेंहूँ, मसूर, मटर, मूंग इत्यादि फसलो की बुआई की जा सकती है। यह मशीन 35–40 अश्वशक्ति (hp) के ट्रेक्टर द्वारा आसानी से खींचा जा सकता है। 9 फाले वाले मशीन द्वारा एक घंटे की करीब एक एकड़ की बुआई हो जाती है यानि की मशीन की बआई क्षमता लगभग 0.4–0.6 हेक्टेयर प्रति घंटा है। मशीन को चलाने में ट्रेक्टर द्वारा एक घंटे मे लगभग 4–6 लीटर डीजल प्रति हेक्टेयर की खपत होती है।

शून्य **जुताई–बीज–सह–उर्वरक ड्रिल के प्रमुख भाग और उनका विवरणः–**

1. **फ्रेम**
2. **स्लिट / फरो ओपनर / फाला**

3. बीज और उर्वरक के बक्से

4. पावर ट्रांसमिशन की इकाई

5. बीज मीटरींगप्रणाली

6. उर्वरक मीटरींगप्रणाली

7. गहराई–नियंत्रण के लिए पहिये

8. हिच बिंदु

शून्य जुताई –बीज–सह–उर्वरक ड्रिलके प्रमुख भाग

1. उर्वरक बक्सा 2. उर्वरक मीटरिंग लीवर 3. बीज एवं उर्वरक के लिए प्लास्टिक पाइप 4. पावर ट्रांस्मिशन इकाई 5. पावर ट्रांसमिशन 'शाफ्ट 6. फ्रेम 7. फर्रो ओपनर/फाला 8. हिच बिंदु 9. ड्राइव व्हील/पहिया

बीज मीटरिंग प्रणाली

बीज और उर्वरक मीटरिंग उपकरणों को संचालित करने के लिए भाक्ति को श्रोत एक अस्थायी प्रकार से संचालित ड्राइव व्हील होता है जिसे पावर ट्रांसमिशन यूनिट कहते हैं। ड्राइव व्हील का व्यास 30–40 से0 मी0 और चौड़ाई 10–12 से0 मी0 होती है। जिसे चेन और स्प्रोकेट के माध्यम से संचालित की जाती है। हालांकि ड्राइव व्हील का आकार विभिन्न मॉडलों में भिन्न हो सकता है। पहिए लोहे के बंद प्रकार के होते हैं तथा तीन सेमी ऊंचाई के चौदह लग्स इसके ऊपर वेल्ड किये जाते हैं जिससे बेहतर कर्शण प्रदान हो

सके। यह ड्राइव व्हील सामने फ्रेम से जुड़ा होता है। ग्राउंड व्हील से पावर एक शाफ्ट द्वारा प्रेशित की जाती है। जो सामने के फ्रेम पर लगा होता है। चेन स्प्रोकेट के माध्यन से इस भाफ्ट द्वारा बीज और उर्वरक मीटरिंग" शाफ्टभी शक्ति पशितकी जाती है। इसके सुचारू रूप से चलने के लिए चेन को कसने या ढीला करने के लिए एक आइडलर प्रदान किया है।

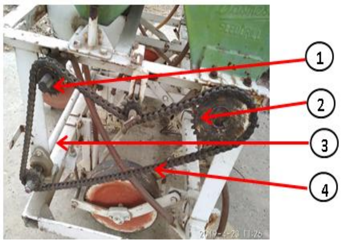

ड्राइव व्हील

1. शाफ्ट 2. आइडलर3.स्प्रोकेट 4.रोलर चेन

बीज मीटरिंग प्रणाली के प्रमुख भाग

बीज मीटरिंग प्रणाली के प्रमुख भाग इस प्रकार हैं:

क) बीज समायोजन लीवर ख) फ्लूटेड रोलर्स ग) एल्यूमीनियम/प्लास्टिक कप घ) प्लास्टिक टयूब ङ) प्रवाह नियंत्रण पट्टी च) बीज बूट

बीज और उर्वरक के बक्सेहल्के स्टील भीट (2 मी0 मी0 मोटी) से बने होते हैं। उर्वरक बॉक्स सामने और बीज बॉक्स पीछे की तरफ एक साा फ्रेम से जुडे होते ह। बक्से (आम तौर पर 145 सेमी लंबे आर 28 सेमी गहरे) एक समय में क्रमशः 50 किलो डी0 ए0 पी0 और 50 किलो गेंहू के बीज रखने के लिए होते हैं। बॉक्स के आयाम अलग–अलग हो सकते हैं लेकिन ये आम तौर पर मशीन की प्रभावी चौड़ाई पर निर्भर करते है और फालोंको संख्या में वृद्धि के साथ बढ़ते है।

बीज और उर्वरक बॉक्स

एल्युमिनियम या अन्य धातु/प्लास्टिक से बने फ्लूटेड रोलर्स फसलों की निरंतर बीजारोपण की सुविधा प्रदान करते हैं यहाँ पौधे की दूरी पर नियंत्रण की आव" यकता नहीं होती है (गेहूं, चावल, तोरिया)। दांत का आकार, नाली की गहराई और बीजक की संख्या बीज के आकार पर निर्भर करती है। उदाहरण के लिए गेहूं के बीज के लिए प्रत्येक रोलर में 10 सीडर होते हैं। रोलर्स एक शाफ्ट पर

एक श्रृंखला में फिट होते है। इन रोलर्स पर एल्युमिनियम कप फिट किए जाते है। फ्लूटेड रोलर्स के नीचे बीज को रखने के लिए एल्यूमीनियम या प्लास्टिक की पट्टी हाती है। बीज के आकार और बनावट के आधार पर पट्टी को बढ़ाया या घटाया जा सकता है। जैस–जैस फ्लुटेड रोलर्स मुड़ते हैं, वे बीज को मीटरिंग बॉक्स के नीचे लगे बीज कप के किनारे पर धकेल देते है। जो प्लास्टिक के टयूबों के माध्यम से फसलों तक पहुंचा देता है।

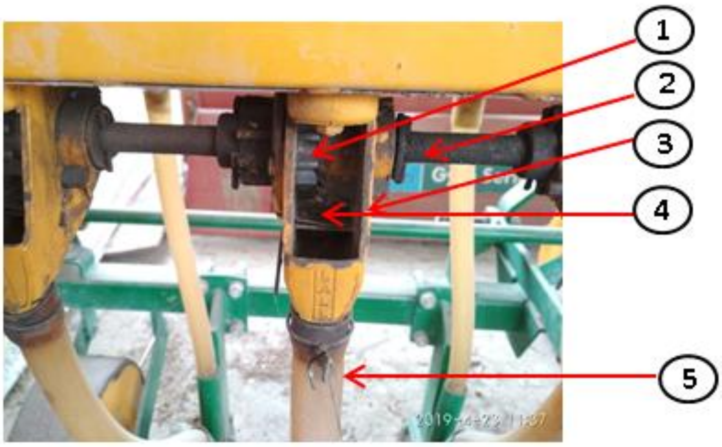

बीज मोटरिंग प्रणाली के प्रमुख भाग

1. फ्लूटेड रोलर्स 2. भााफ्ट 3. एल्युमिनियम कप 4. पट्टी 5 प्लास्टिक टयूब

बीज दर का निर्धारण (कैलिब्रेशन)

सबसे पहले ड्राइव व्हील के व्यास मी0 को मापें और इसकी परिधि (P=3.14*D) मी0 की गणना करे।

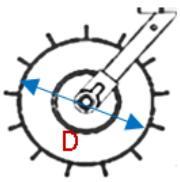

ड्रिलिंग मशीन की प्रभावो चौड़ाई मी0 को मापें या फालों की कुल संख्या को उनके बीच की दूरी से गुणा करें।

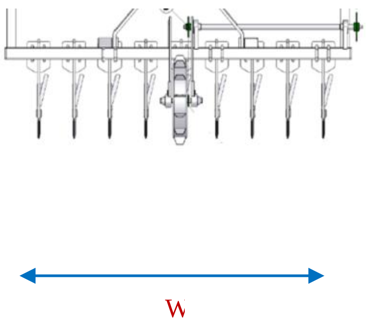

- ड्राइव व्हील के एक बार घूर्णन करने से मशीन द्वारा क्षेत्र कवरेज
- बीज ड्रिल को उठाएं ताकि ड्राइव व्लील मुक्त हो जाए। पहिए के रिम पर चॉक से निशान लगांए।
- बीज गिरने वाले प्लास्टिक के टयूबोंकों बीज बूट से बाहर निकल लें एवं प्रत्यें टयूबों के नीचे एक प्लास्टिक की थैली बांध दे ताकि बीज उसमें जमा हो सके।

प्लास्टिक की थैलियों में बीजों का संग्रह

- बीज बॉक्स में बीज भरें, बीज दर समायोजन लीवर सेट करें और पहिया को गिनती करके 20 (n) बार घुमाएं।
- ड्राइव व्हीलघुामने से प्लास्टिक की थैली में बीज जमा हो जायेगें। सभी थैलियों से बीज निकल कर एकत्र करें और इसका वनज कि0 ग्रा0 करें।
- प्रति हेक्टेयर बीज दर की गणना के लिए निचे दिए गये सूत्र का प्रयोग करें।
- इस प्रकार प्रति हेक्टेयर बीज दर की गणना की जा सकती है। बीज दर में कोई भी परिवर्तन यदि आव" यक हो, तो लीवर को समायोजित करके और वांछित बीज दर प्राप्त होने तक मशीन को पुनर्गणना करके पूरा किया जा सकता है।

- अगर यह जानना हो कि प्रत्येक पंक्तियों में बीज की मात्रा बराबर गिर रही है की नही उके लिए प्रत्येक प्लास्टिक की थैली से एकत्रित बीज का वनज करें एवं उसे रिकॉर्ड करें। मशीन के सही होने पर प्रत्येक थैली से प्राप्त बीज की मात्रा में बहुत ही कम अंतर आएगा(3–4 ग्राम)। अगर अतर इससे ज्यादा आ रहा हो तो मशीन के बीज मीटरिंग प्रणाली को जाँच करने की आवश्यकता है।

उदाहरण : अगर ड्राइव व्हील का व्यासD= 30 से0मी0 है, म” ीन में 9 फाले है तथा फालों के बीच की दूरी 22 से0मी0 है तथा ड्राइव व्हील को 20 बार घुमाने पर प्लास्टिक की सभी 9 थैलियों से 340 ग्राम गेहूं प्राप्त होता है तो शून्य जुताई–बीज–सह–उर्वरक ड्रिल का बीज दर का निर्धारण करें।

उत्तर : मशीन की चौड़ाईW= फालों की संख्या× फालों के बीच की दूरी

9× 22 से0मी0= 198से0मी0

= 1.98मी0

ड्राइव व्हील का व्यासD = 30 से0मी0= 0.3 मी0

ड्राइव व्हील की परिधिP= 3.14×D=3.14× 0.3

=0.942 मी0

ड्राइव व्हील के एक बार घूर्णन करने A= P × W वर्ग मी0

से म” ीन द्वारा क्षेत्र कवरेज = 0.942 ×1.98 वर्ग मी0

=1.865 वर्ग मी0

ड्राइव व्हील को 20 (n) बार घुमाने पर कुल बीज का वनजM =340 ग्रा0

इसलिए, गेहू की बीज दर $= \frac{M \times 10000}{A \times n}$ कि0 ग्रा0 प्रति हे0

$= \frac{0.34 \times 10000}{}$ कि0 ग्रा0 प्रति हे0

1.865×20
$= 91.153$ कि0 ग्रा0 प्रति हे0

साधारणतया, गेहूं की बीज दर करीब 100 कि0ग्रा0 प्रति हे0 होती है। शून्य जुताई–बीज–सह–उर्वरक ड्रिल का बीज दर 91कि0ग्रा0 प्रति हे0 आ रहा है जो की कम है अतः लीवर को समायोजित करके, वांछित बीज दर प्राप्त होने तक मशीन को पुर्नगणना करते रहना चाहिए।

उर्वरक मीटरिंग उपकरण

उर्वरक मीटरिंग उपकरण के प्रमुख भाग इस प्रकार हैः

क) उर्वरक बॉक्स के नीचे हीरे के आकार के छेद
ख) स्केल
ग) उर्वरक सेटिंग लीवर
घ) एल्यूमीनियमकप
ड) एजीटेटर
च) फ्लूटेड रोल्लर
छ) उर्वरक मीटरिंग शाफ्ट

उर्वरक मीटरिंग उपकरण आम तौर पर छोटे छोटे जाल नुमा प्रकार का होता है जो कि एक शाफ्ट पर व्यवस्थित होता है। उर्वरक बॉक्स के तल में, हीरे के आकार के छेद बनाय जाते हैं। इन छेदों के आकार को समायाजित करके उर्वरक की मात्रा को समायोजित किया जाता है। उर्वरक के बड़े टुकड़ों के इन छेदों में फसने कि स्थिति में स्टार नूमाएजीरेटर दिए जाते है जो कि उर्वरक कि सही मात्रा सनिश्चित करते है। उर्वरक की आवश्यक मात्रा को समायोजित करने के लिए उर्वरक सेटिंग हैंडल दिया जाता है। उर्वरक छेद में से होकर, एक फनल के रास्तें, स्लिट/फरो ओपनर में पहुंचता है।

अन्य मशीनों में, उर्वरक बॉक्स धूर्णन सेल के साथ फिट किए गए कप को सामग्री वितरित करता है। घूमने वाले सेल उर्वरक दानों (छोटे या बड़े) को उठाती हैं और उन्हें उर्वरक टयूबों मं पहुंचाती है। इस तंत्र ये यूरिया सुपरग्रानुल्स जैसे छोटे या बड़े आकार के उर्वरक कणिकाओं को संभालने और उन्हें मिट्टी की गहराई पर रखने का फायदा होता है। इस विधि के प्रयाग से चावल कि उपज में बीस प्रतिशत तक बढ़ोत्तरी सुनिश्चित की जा सकती है। अन्य मशीन के प्रयोग में आमतौर पर जब खेत के कोने पर ट्रैक्टर को घुमाया जाता है तो उस जगर पर भी उर्वरक गिर जाता है परंतु इस उपकरण के प्रयोग से खेत के कोने पर ट्रैक्टर घुमाने के दौरान उर्वरक न गिरने के कारण बचत होती है।

क) एजीटेटर एवं फ्लूटेड रोल्लर   ख) कप ध्सेल नुमा मीटरिंग प्रणाली

उर्वरक मीटरिंग प्रणाली के प्रकार

नैनोटेक्नोलॉजीः मृदा सुधार के क्षेत्र में आधुनिक प्रौद्योगिकी की प्रासंगिकता

कीर्ति सौरभ[1], राकेश कुमार[1], जे एस मिश्र[1], टी एल भूटिया[2], अनूप कुमार चौबे[1]
1 भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
2. राष्ट्रीय आर्किड अनुसंधान केंद्र, सिक्किम

विकासशील देशों में नैनो प्रौद्योगिकी ऊर्जा, पर्यावरण, स्वास्थ्य एवं कृषि से संबंधित अन्य क्षेत्रों में क्रांतिकारी तकनीक के रूप में उभर रही है। नैनो प्रौदयोगिकी किसी तकनीक को नैनो पैमाने पर दर्शाती है जिसका विभिन्न क्षेत्रों में अलग–अलग महत्व होता है। जब किसी पदार्थ का आकार 1–100 नैनोमीटर के बीच में होता है तो उसे नैनो कणों के रूप में जाना जाता है। किसी पदार्थ के गुण नैनो पैमाने पर उसके असली स्वरूप से बिल्कुल भिन्न होते है, इन्ही गुणों के कारण, नैनो कणों ने विज्ञान और प्रौद्योगिको के क्षेत्र में नए रास्ते खोल दिए हैं। यह प्रौद्योगिकी 21वीं सदी में हमारी अर्थव्यवस्था और समाज पर गहरा प्रभाव उत्पन्न कर रही है। दवा, रसायन विज्ञान, पर्यावरण, ऊर्जा, सूचना एवं संचार, भारी उद्योग और उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्रों के अलावा इस प्रौद्योगिकी ने मृदा एवं जल के सुधार में भी कई प्रकार की भूमिका निभाई है। यद्यपि नैनो एक नया शब्द प्रतीत होता है लेकिन यह क्षेत्र पूरी तरह से नया नहीं है। जब से धरती पर जीवन का प्रारम्भ हुआ तभी से निरंतर 3.8 अरब वर्षों से विकास के माध्यम से प्रकृति में परिवर्तन हो रहा है। प्रकृति में ऐंसी कई सामग्री, वस्तुएँ एवं प्रक्रियाएँ हैं जो बड़े से लेकर नैनो पैमाने तक कार्य करते हैं।

नैनो कणों की संश्लेषण प्रक्रियाएँ आम तौर पर दो सिद्धांतो पर काम करती हः

नैनो प्रौद्योगिकी के अंतर्गत पदार्थों के नैनो स्तर पर निर्माण के लिये इच्छित आकार–प्रकार वाले अपेक्षित पदार्थ की आवश्कता होती हैं, जिसके लिये टॉप–डाउन एवं बॉटम–अप तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। टॉप–डाउन तकनीक के अंतर्गत यांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा वृहत संरचनाओं पर नैनो स्तरीय उत्पादों का निर्माण किया जाता है और इसके लिए किसी पदार्थ के छोटे–छोटे टुकड़ों को निरीक्षण या प्रेक्षण के माध्यम से इच्छित आकार में लाया जाता है। इस तकनीक की सबसे बड़ी चुनौती यह है कि नैनो स्तर पर संरचनाओं के निर्माण में पर्याप्त सटीकता का ध्यान रखना पड़ता है। वहीं बॉटम–अप तकनीक में नैनो स्तर पर जैव और अजैव संरचनाओं का निर्माण कार्य किया जाता हैं तथा इसके लिये तकनीक के माध्यम से लघुतम उप–इकाइयों अणु या परमाणु को एक–एक करके जोड़कर एक बड़ी संरचना का निर्माण किया जाता है। वर्तमान में नैनो प्रौद्योगिकी का विकास मुख्यतः टॉप–डाउन क्रियाविधि के द्वारा होता है। बॉटम–अप तकनीक की चर्चा अभी सौतिक स्तर पर ही परंतु अपने पूर्ण विकास स्तर पर बॉटम–अप तकनीक नैनो उत्पादों के स्वचालित उत्पादन में सक्षम हो जाएगी।

नैनो कणों का मृदा सुधार में उपयोग

दूषित मृदा सुधार के लिए अनेक प्रकार की जाँच एवं शोध कार्य किए गए हैं। नैनो प्रौद्योगिकी की एक विशष प्रासंगिकता यह है कि इनमें नैनो कृणों को दूषित मृदा में डाल दिया जाता है। इससे रासायनिक प्रक्रियाएँ उत्पन्न होती है जो प्रायः प्रतिक्रिया

शीलता एवं अवशोषण सिद्धांत पर कार्य करती है जिसके फलस्वरूप मृदा में विद्यमान विषाक्त तत्व अत्यंत अघुलनशोल होकर पौधे को हानि नहीं पहुँचा पाते है। मृदा सुधार के लिए पारंपरिक संसाधनों का प्रयोग करने की बजाय नैनों सामग्री का प्रयोग अधिक लाभकारी है, छोटा आकार तथा अत्याधिक विशिष्ट सतह क्षेत्र होने के कारण नैनो कणों का मृदा में वितरण काफी सरल है जिसके फलस्वरूप इनकी रासायनिक प्रतिक्रिया दर बढ़ जाती है। जो मृदा सुधार के लिए उच्च क्षमता तथा उच्च दर को दर्शाता है। छोटा आकार स्थानिक (इनसीटू) प्रयोग में आसान तथा वितरण के लिए फायदेमंद हैं। मृदा सुधार के लिए अच्छी क्षमता वाले कुछ नैनो कण जैसे जियोलाइट्स, सल्फाइड इत्यादि का प्रयोग भाामिल है। इनका उपयोग एवं विस्तारपूर्वक विश्लेषण निम्नानुसार हैः

तालिका : मृदा सुधार के लिए प्रयुक्त नैनो कण

संश्लेषित नैनो कण	उपयोग
‘ शन्य संयोजनयुक्त (वैलंट) नैनो कण	क्रामियम स्थिरीकरण, डीडीटी की गिरावट, इबुप्रोफेन की गिरावट
स्टार्च स्थिर चुंबकीय नैनो कण	आर्सेनेट का स्थिरीकरण
शून्य वैलेंट नैनो कण और लैड / आयरन	पॉलीक्लोरीनेटेड बाइफिनाइल की हाइड्रोडिक्लोरीनेशन
शून्य वैलेंट नैनो कण और कैलि” ायम ऑक्साइड	पोलीक्लोरोनेटेड डाइबेनजेनो पी–डाईआक्साइन एंड डाइ बेंजोफुरनास
एपेटाइट नैनो कण	लेड स्थिरीकरण
पोलीसेकाराइड स्थिर फेरस–मैंगजीन ऑक्साइड नैनो कण	आर्सेनिक का स्थिरीकरण

जियोलाइट्स

जियोलाइट्स क्रिस्टलीय क्षार (सोडियम या पोटेशियम) और पृत्वी के क्षारीय धनायनों (कल्शियम या मैग्रीशियम) के हाइड्रेटेड अलुमिनो सिलिकेट होते है। संरचना में किसी बड़े परिवर्तन के बगैर इनकी जलीय / निर्जलीकरण तथा जलीय विलयन में अपने घटक धनायनों के आदान–प्रदान करने की क्षमता होती है। कृषि क्षेत्र में इन जियोलाइट्स को दूषित मृदा के लिए मृदा कंडीशनर, उर्वरक और सुधारक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

सूखे की समस्या को सुधारने के लिए जियोलाइट्स मिट्टी में एक बाती (केपिलरी) सामग्री के रूप में कार्य करता है और उथले भूजल को पौधे की जड़ क्षेत्र तक पहुँचाता है तथा पौधों की वर्षा या सिंचाई पर निर्भरता को कम करने में सहायता करता है। जियोलाइट्स को मिट्टी में मिलाने से इसकी धनायन विनियम क्षमता और पीएच मान में वृद्धि दर्ज को गई है जिससे मिट्टी की पोषक तत्वों को धारण करने की क्षमता बढी है। रेतीली मिट्टी मे 10 प्रतिशत सी.जी.–1 जिओलाइट के प्रयोग से धनायन विनियम क्षमता में 0.08 से 15.59 सी.मोल.सी / कि.ग्रा. और पीएच मान में 5.4–6.6 की वृद्धि आंकी गई।

नैनो उर्वरक

जियोलाइट्स वर्धित उर्वरकों के अलावा कुछ ऐसे और भी नैनो कणों को खोजा गया है जो उर्वरक के रूप में उपयोगी है। नैनो प्रौद्योगिकी के उपलब्ध विकल्पों में से एक कृषि क्षेत्र में उर्वरक के लिए सिफारिश है जिससे दुनिया की बढ़ती आबादी को खिलाने के लिए फसल उत्पादन में वृद्धि हो सके। जियोलाइट्स को कृषि के क्षेत्र में नाइट्रोजन उर्वरकों के निक्षालन से होने वाले नुकसान एवं पौधों में अमोनिया विषाक्तता को कम करने तथा कृषि पैदावार बढ़ाने के लिए प्रभावी ढ़ग से प्रयोग किया जा सकता है। जबकि अम्लीय मृदा पर जियोलाइट के 10 प्रतिशत प्रयोग का वर्षा के सतही प्रवाह तथा मृदा अपरदन से होने वाले नुकसान का परीक्षणों में मृदा स्थिरता तथा भौतिक दशा में सुधार पाया गया है। अतः नैनो कणों से सतही अप्रवाह तथा अपरदन से होने वाला मृदा नुकसान को कम किया जा सकता है।

भा्न्य वैलेंट आयरन

नैनो पैमाने पर भा्न्य वैलेंट आयरन तकनीक 1990 के दशक में शुरु हुई। तब इस तकनीक को विषाक्त हैलोजीनेटेड हाइड्रोकार्बन यौगिकों और अन्य पैट्रोलियम किया गया था क्योंकि गैस टैंक रिसाव में कार्बनिक विलायक फैलाव के माध्यम से भूजन वातावरण में प्रवेश करते है। ये धात्विक आयरन के नैनो कण अत्याधिक सक्षम रेडुसिंग एजेंट के रूप में काम करते है ये स्थिर जैविक प्रदूषक को नष्ट करके सौम्य यौगिको में परिवर्तित करने में सक्षम है। इस प्रकार के नैना कण क्लोरीनयुक्त बैंजीन, कीटनाशक, पॉलीक्लोरीनेटेड बाइफिनाइल और नाइट्रो–एरोमैटिक यौगिक आदि प्रदूषकों के नुकसान को कम करने में सक्षम होते हैं।

आयरन ऑक्साइड के नैनो कण

आयरन/लौह मिट्टी का एक महत्वपूर्ण घटक है जो पाधों और जानवरों के लिए आवश्यक पोषक तत्व के रूप में पृथ्वी में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध तत्वों में चौथे स्थान पर विद्यमान है। आयरन ऑक्साइड मृदा में प्रायः नैनो क्रिस्टल के रूप में पाया जाता है जिसका व्यास (5–100 नैनो मी.) हैं। इसकी सतह विभिन्न प्रकार के अकार्बनिक और कार्बनिक अवयवों को अवशोषित करने में क्रियाशोल होती है। विषाक्त पदार्थों के प्रति प्रमुख अवशोषण क्षमता आर पर्यावरण के प्रति अनुकूल विशषताओं के कारण, आयरन ऑक्साइड नैनो कणों के कई रूपों का निर्माण किया गया है तथा मिट्टी और पानी के सुधार के लिए स्थानिक अनुप्रयोगों में सफलतापूर्वक उपयोग किया गया है। इन नैनो कणों को दूषित मृदा में कम कीमत पर पम्प द्वारा या सीधे तौर पर फैला सकते है क्योंकि इनसे द्वितीय प्रदुषण का खतरा नहीं हाता है। औद्योगिक अवशिष्ट पदार्थ जिनमें आयरन ऑक्साइड प्रचुर मात्रा में विद्यमान होते है उन्हें आजकल मृदा में धातु स्थिरीकरण के लिए प्रयोग किया जा रहा है। जलीय माध्यम में किए गए शाध कार्यों से यह ज्ञात हुआ है कि आयरन ऑक्साइड नैनों कण मृदा में मौजूद हानिकारक एवं विषाक्त भारी धातु कणों की उपलब्धता एवं चालकता को अवशोषण सिद्धांत द्वारा कम कर देता है। आयरन नैनों कणों में नैनो–हैमेटाइट एवं नैनो–मैग्रेटाइट की अवशोषण क्षमता एक समान होती है।

फॉस्फेट आधारित नैनो कण

फॉस्फेट आधारित नैनो कण, शून्य वैलेंट आयरन और आयरन ऑक्साइड नैनो कणों से अलग है। ये भारी धातु द्वारा दूषित मृदा का सुधार अत्याधिक अघुलनशील और स्थिर फॉस्फेट यौगिकों के गठन द्वारा करते है। इसका एक विशिष्ट उदाहरण लैड (पारा) से विषाक्त मृदा सुधार का है। एक शोध कार्य के परिणामों में दर्शाया गया है कि नैनो कणों के प्रयोग द्वारा तीन प्रकार की मृदा (कैल्शियम युक्त उदासीन और अम्लीय) में सीसा के निक्षालन और पादप उपलब्धता में प्रभावी रूप से कमी होती है।

आयरन सल्फाइड नैनो कण

फॉस्फेट आधारित नैनो कणों द्वारा भारी धातु स्थिरीकरण के समान ही सल्फाइड आधारित नैनो कण द्वारा मिट्‌टी और पानी में पारा और आर्सेनिक को खत्म करने के लिए विशेष शोध किए गए है। जलभराव की कि स्थिति वाली एवं भारी धातुओं से विषाक्त मृदा में रेडुसड सल्फर ऑक्साइड का प्रयोग किया जाता है। जिसमें रेडुसड सल्फर स्थिरीकरण या सिंक के रूप में कार्य करता है तथा मृदा में विद्यमान धातु के साथ रासायनिक अभिक्रिया द्वारा अत्यधिक अघुलंशोल धातु के सल्फाइड बनाकर मृदा सुधार करता है।

निष्कर्ष

नैनो कणों द्वारा मृदा सुधार पर किए गए सभी शोध कार्यों ये यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रौद्योगिकी पारंपरिक संसाधनों को प्रयोग करने की बजाय ज्यादा लाभकारी है। आकार छोटा होने के कारण मृदा में आसान वितरण द्वारा मृदा सुधार की दर में भी वृद्धि दर्ज की गइ है। अतः आने वाले समय में प्रदूषित जल एवं मृदा सुधार के लिए यह तकनीक कारगर साबित होगी।

हरी खाद– मिट्टी की उपजाऊ शक्ति बढ़ाने का एक सस्ता विकल्प

मंधाता सिंह, विश्वेन्दु द्विवेदी, देवकरन, रामकेवल, हरी गोविंद, आरिफ परवेज एवं अफरोज सुल्तान
कृषि विज्ञान केन्द्र, लालगंज, बक्सर

वर्तमान समय में खेती में रासायनिक उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग एवं सीमित उपलब्धता को देखते हुए अन्य पर्याय भी उपयोग में लाना आवश्यक हो गया है, तभी हम खेती की लागत कम कर फसलों के उत्पादन को भी बढ़ा सकते ह, साथ ही मिट्टी की उर्वरा शक्ति को भी अगली पीढ़ी के लिये बरकरार रख सकते ह। रासायनिक उर्वरकों के पर्याय के रूप में हम जैविक खादों जैसे गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद आदि को उपयोग कर सकते है। इनमें हरी खाद का प्रयोग सबसे सरल व अच्छा प्रयोग है। हमारे देश में हरी खाद के प्रयोग की प्रक्रिया पर लम्बे समय से चल रहे शोध कार्यो से सिद्ध हो चुका है कि हरी खाद का प्रयोग फसल उत्पादन क लिये बहुत लाभकारी है ।

हरी खादः मिट्टी की उर्वरा शक्ति में वृद्धि हेतु पौधे के हरे वानस्पतिक भाग को उसी खेत में उगाकर या दूसरे स्थान से लाकर खेत में मिला देने की प्रक्रिया को हरी खाद देना कहते हैं। हरी खादों में सनई व ढचा की हरी खाद का प्रचलन हमारे देश में बहुतायत होता है। सनई तथा ढैंचा की फसल की पलटाई, बुवाई के 45–60 दिन बाद कर देने से प्रति हेक्टेयर 150–200 किग्रा नाइट्रोजन, 20–25 किग्रा फास्फोरस, 50–100 किग्रा पौटैशियम के साथ–साथ बहुत सारे सूक्ष्म पोषक तत्व फसल के उपयोग हेतु उपलब्ध रहते हैं। लवणीयता तथा जलमग्नता की परिस्थितियों में ढैंचा की हरी खाद प्रयोग करने से भुमि सुधार भी होता है। मूँग, उर्द तथा लोबिया का भी हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। इन फसलों के प्रयोग करने से मिट्टी में वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है।

हरी खाद प्रयोग करने की विधियां–

असमान खेत में पलटाई करना(In situ green manuring): जिस खेत में खाद देना होता है, उसी खेत में फसल उगाकर उसे मिट्टी पलटने वाले हल से जोतकर मिट्टी में मिला दिया जाता है। हरी खाद देने की यह विधि सर्वाधिक प्रचलित है तथा इस विधि में सनई, ढैंचा, ग्वार, मूंग, उर्द आदि फसलों को हरी खाद के रूप में प्रयोग किया जा सकता।

ब. खेत से दूर उगाई जाने वाल हरी खाद(Ex situ green manuring): इस विधि में हरी खाद को फसल उगाये जाने वाले खेत से अन्यत्र ले जाकर प्रयोग किया जाता है। जैसे जंगल या अन्य स्थानों पर उगे पेड़–पौधे एवं झाड़ियों की पत्तियां, टहनियां इत्यादि को खेत में हरी खाद हेतु मिलाना।

हरी खाद के लाभः

1. हरी खाद को मिट्टी में मिलाने से मिट्टी की भौतिक/शारीरिक स्थिति में सुधार होता हैं।
2. मृदा में पोषक तत्वों की उपलब्धता को बढ़ाता है।
3. पोषक तत्व की उपलब्धता से मृदा की उर्वरता को बढ़ाता है।
4. सूक्ष्म जीवाणुओं की गतिविधियों को बढ़ाता है।
5. मिट्टी की संरचना में सुधार होने के कारण फसल की जड़ों का फैलाव अच्छा होता है।
6. हरी खाद के लिए उपयोग किये गये फलीदार पौंधे वातावरण से नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करते हैं जिससे भूमि की नाइट्रोजन शक्ति बढ़ती है।
7. पौधों के मिट्टी में गलने–सड़ने से मिट्टी की नमी को जल धारण की क्षमता में बढ़ोत्तरी होती हैं। हरी खाद क गलने–सड़ने से कार्बन–डाई–आक्साइड गैस निकलती है जो कि मिट्टी से आव यक तत्वों को मुक्त करवा कर मुख्य फसल के पौधों को आसानी से उपलब्ध करवाती है।
8. हरी खाद दबाने के बाद बोई गई धान की फसल में खरपतवार न के बराबर होते हैं।

हरी खाद के लिए एक उपयुक्त फसल की निम्न विशेषताएं होनी चाहिएः

- फसल ऐसी हो जिसमें शीघ्र वृद्धि करने की क्षमता हो तथा जिससे न्यूनतम समय में हरी खाद को तैयार किया जा सके।

- चयन की गई दलहनी फसल में अधिकतम वायुमंडलीय नाइट्रोजन का यौगिकीकरण करने की क्षमता होनी चाहिए जिससे जमीन को अधिक से अधिक नाइट्रोजन उपलब्ध हो सके।
- फसल की वृद्धि होने पर अतिशीघ्र अधिक से अधिक मात्रा में पत्तियाँ व कोमल शाखाएं निकल सके, जिससे कि प्रति इकाई क्षेत्र से अत्यधिक हरा पदार्थ मिल सके तथा आसानी से सड़ सके।
- फसल गहरी जड़ वाली हो जिससे वह जमीन में गहराई तक जाकर अधिक से अधिक पोषक तत्वों को खींच सके। हरी खाद की फसल सड़ने पर उसमें उपलब्ध सारे पोषक तत्व मिट्‌टी की ऊपरी सतह पर रह जाते हैं जिनका उपयोग बाद में बोई जानेवालो मुख्य फसल के द्वारा किया जाता है।
- फसल के वानस्पतिक भाग मुलायम होने चाहिए।
- फसल की जल व पोषक तत्वों की मांग कम से कम होनी चाहिए।

हरी खाद की बुवाई का समयः

हमारे देश में विभिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती हैं अतः सभी क्षेत्रों के लिए हरी खाद की फसलों की बुवाई का एक समय निर्धारित नही किया जा सकता। परन्तु फिर भी यह कह सकते है कि उपरोक्त सारिणी के अनुसार अपने क्षेत्र के लिए अनुकूल फसल का चयन करके, बुवाई वर्षा प्रारंभ होने के तुरन्त बाद कर देना चाहिए तथा यदि सिंचाई की सुविधा उपलब्ध हो तो हरी खाद की बुवाई वर्षा शरू होने के पूर्व ही कर देना चाहिए। हरी खाद के लिए फसल की बुवाई करते समय खेत में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है। बीज की मात्रा हरी खाद वाली फसलों की बुवाई हेतु, बीज के आकार पर निर्भर करती है। जिन फसलों के बीज छोटे होते हैं उनमें बीज दर 25—30 किलोग्राम तथा बड़े आकार वाली किस्मों की बीज दर 40—50 किलोग्राम/हेक्टेयर तक पर्याप्त होता है।

उर्वरक की आवश्यकता

हरी खाद की फसल को उर्वरकों की आवश्यकता बहुत कम मात्रा में होती है परन्तु फसल को शीघ्र बढ़ाने हेतु, जिससे कि मिट्टी को अधिक से अधिक हरा पदार्थ मिल सके व आगे की फसल की उपज को बढ़ाने हेतु, 50–60 किग्रा/हेक्टेयर फास्फोरस की मात्रा देना पर्याप्त होता है।

फसल की पलटाई का समय .

फसल को एक विशेष अवस्था पर ही खेत में पलटने से भूमि को अधिकतम नाइट्रोजन एवं जीवांश पदार्थ की मात्रा प्राप्त होती है। इस अवस्था से पहले या बाद में फसल पलटने से अपेक्षित लाभ नहों मिल पाता है। यह विशेष अवस्था उस समय होती है जब फसल कुछ अपरिपक्व अवस्था में हो तथा फूल निकलना प्रारम्भ हो गये हो। इस समय वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है तथा पौधों की शाखाएं व पत्तियां मुलायम होती हैं तथा फसल का कार्बनः नाइट्रोजन अनुपात भी कम होता है। सनई की फसल में 50 दिन बाद तथा ढेंचा में 40 दिन बाद यह अवस्था आती है। फसल को पलटने के लिये पुरानी पद्धति में पाटा चलाकर फिर मिट्टी पलटने वाले हल से फसल को मिट्टी में दबा दिया जाता है। परन्तु अब रोटावेटर की उपलब्धता व प्रयोग से यह कार्य अधिक बेहतर तरीके से किया जा सकता है क्योंकि इसमें फसल को सीधे छोटे–छोटे टुकड़ों में काटकर मिट्टो में मिलाने की प्रक्रिया एक बार में ही पूर्ण कर दी जाती है। जिससे समय की बचत के साथ–साथ हरे पदार्थ का सड़ाव जल्दी पूर्ण होता है।

चित्र न./टेबल न.1

हरी खाद की फसलों की औसत उत्पादकता एवं उनके उपयोग से मृदा में जीवांश पदार्थ एवं नाइट्रोजन का संभावित योगदान

क्र. स०	फसल का नाम	हरे पदार्थ की उपज	जल की मात्रा (%)	जीवांश पदार्थ की	नाइट्रोजन की मात्रा किग्रा/हे०

		क्विं०/हे०		मात्रा (%)	
1	सनई	212.0	75.0	0.43	83.8
2	ढैंचा	200.0	75.0	0.43	83.8
3	उर्द	120.0	83.0	0.43	77.5
4	मूंग	80.0	75.0	0.53	50.0
5	लोबिया	150.0	86.	0.49	56.7
6	टेपोरेसिया	100.0	44.7	0.78	67.3

माइक्रोगीन्सः बेहतर स्वास्थ्य के लिए अधिक पोषण

तन्मय कुमार कोले[1], धीरज कुमार सिंह[1], अनिर्बन मुखर्जी[1], कुमारी शभा [1], उज्ज्वल कुमार[1] रतन कुमार[2], राजू. एन. सिंह[1] और अभिषेक कुमार[1]
[1]भा.कृ.अनृ.प. का पूर्वी अनु. परिसर, पटना– 800 014
[2]के.वी.के., रोहतास

इक्कीसवीं सदी में अनियमित जीवनशैली और खराब भोजन की आदत के कारण, विकसित और विकासशील दोनों देशों में विभिन्न रोगों जैसे कैंसर, मधुमेह, मोटापा, हृदय तथा रक्त वाहिका संबंधी रोग, उच्च रक्तचाप आदि की समस्याएं बढ़ रही हैं। यद्यपि इन बीमारयिों का दूर करने के लिए विभिन्न कृत्रिम दवाएं उपलब्ध हैं, तथापि उनमें से अधिकांश महंगे हैं और इनके दुष्प्रभाव भी हो रहे हैं। इन समस्यों को दूर करने के लिए वैज्ञानिक पोषण संबंधी यौगिक के नए प्राकृतिक स्त्रोतों की खोज कर रहे हैं। हाल ही में, सब्जियों और अन्य खाद्य पौधें में 'माइक्रोग्रीन्स' अपने पोषण के ठोस स्त्रोत के कारण व्यापक रूप से ध्यानाकर्षण का केंद्र बन रहा है।

माइक्रोग्रीन्स लघु खाद्य हर्व का एक छोटा रूप है जो विभिन्न प्रकार की सब्जियों, जड़ी–बूटियों और पौधों से प्राप्त होता है, जिसे अंकुर के रूप में काटा जाता है, और जो स्वाद और पोषण में समृद्ध होता है। इसके तीन मूल भाग हैं, एक केंद्रीय तना, दो बीजपत्र पत्तियां और आमतौर पर बहुत लघु पत्तियों की पहली जोड़ी होती है जो 4 से 14 दिना से अधिक पुरानी नहीं होती हैं। 1990 के मध्य में कैलिफोर्निया, संयुक्त राज्य अमेरिका में माइक्रोगीन्स पहली बार लोकप्रिय हुई। हालांकि शब्द **''माइक्रोग्रीन्स''** को पहली बार 1998 में प्रलेखित किया गया था एवं बाद में इसे विभिन्न प्रमुख बाजारों और रेस्तरां में नए खाद्य हर्व के रूप में लोकप्रियता मिली।

माइक्रोग्रीन्स क्यों? माइक्रोग्रीन्स विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्व विशेष रूप से विटामिन और खनिज से परिपूर्ण होता है। लीपोफ्लीक विटामिन परिपक्व भागों की तुलना में माइक्रोग्रीन्स में बहुत अधिक पाया जाता है। परिपक्व भागों की तुलना में 40 गुना अधिक तक माइक्राग्रीन्स में लीपोफ्लीक विटामिन होते हैं। हाल ही में कुछ रिपोर्टों से पता चला है कि माइक्रोग्रीन्स में कुछ सूक्ष्म पोषक तत्व अधिक है। यह बहुत रोचक है कि गैर–पोषक कारक

जैसे नाइट्रेट और नाइट्राईट तत्त्व भी माइक्रोग्रीन्स में कम हैं। इसके अतिरिक्त माइक्रोग्रीन्स विभिन्न जैवसक्रिय योगिकों के स्त्रात हैं। इसके अलावा, यह आसानी से सीमित इनपुट का उपोग करके उत्पादित किया जा सकता है जो उस व्यक्ति के लिए विशेष रूप से शहरी या पेरी–शहरी सेटिंग्स शहरों में नजदीकी स्थान में उपयोगी होगा जहां भूमि अक्सर सीमित होती है। इसके अलावा, वे पूरे वर्ष उत्पादित किए जा सकते हैं, आम तौर पर, अंकुर को किसी विशेष मौसम की स्थिति की आवश्यकता नहीं होती है। उनके छोटे विकास चक्र को देखते हुए, उन्हें बिना मिट्टी और बिना बाहरी लागत जैसे खाद और कीटनाशकों के आवासीय क्षेत्रों के आसपास या अंदर उगया जा सकता है। इस प्रकार वे व्यावहारिक रूप से रासायनिक मुक्त उपज हैं। इसके अलावा, वे आम तौर पर उन्हें बिना पकाए उपयोग में लाए जाते है, इसलिए खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से थर्मोलैबल सूक्ष्म पोषक तत्वों का नुकसान या गिरावट नहीं होता है।

माइक्रोग्रीन्स उत्पादन के लिए फसलों का चयन

बीजों के माध्यम से उगाई गई फसल का उपयोग माइक्रोग्रीन्स उत्पादन के लिए किया जाता है। फसल का चयन अंकुर का रंग, बनावट, स्वाद और बाजार के मांग पर आधारित है। इन फसलों का त्वरित अंकुरण आसानी से उच्च पोषक मूल्यों के साथ बढ़ने वाला भी होना चाहिए। सबसे अधिक संभावित माइक्रोग्रीन्स अमरेन्थेसी, चेनोपोडिएसी, बथुआवर्गीय, गोभीवर्गीय और एपीएसी गाजरवर्गीय पत्तेदार सब्जी से संबंधित सब्जी फसलों में पाए जाते हैं। कुछ फसलें, जो फैबेसी परिवार से संबंधित है, भी माइक्रोग्रीन्स के लिए उपयुक्त हैं। विभिन्न रंगद्रव्यों जैसे क्लोरोफिल, कैराटेनॉयड्स, एंथोसायनिन, बेटिलियन आदि की उपस्थिति के कारण इन परिवारों में विभिन्न रंग शेड उपलब्ध हैं। क्लोरोफिल माइक्रोग्रीन्स को हरे–भरे रंग से गहरे रंग प्रदार करता है। कैरोटिनॉयड्स माइक्रोग्रीन्स को पीला रंग प्रदान करते हैं। पश्चिमी बाजार में दो पीले रंग के माइक्रोग्रीन्स, पीला पॉपकॉर्न शूट और पीला मटर टेंड्रिल्स लोकप्रिय है, जिन्हें पीला करके प्राप्त किया गया है। एन्थोसायनिन ब्रिसैकेसी और एपियासी परिवार से संबंधित माइक्रोग्रीन्स को बैंगनी रंग पदान करता है। बीटालेंस मुख्य रूप से पौधों में पाए जाते हैं जो एमारथेसे और चेनापोडियासी परिवार से संबंधति होते हैं जो चमकदार

लाल–गुलाबी या पीले रंग प्रदान करते हैं। ब्रैसिरसी और एपियेसी परिवार के माइक्रोगीन में अलग–अलग स्वाद होते हैं जो उन्हें विभिन्न व्यंजनों को सजाने के लिए उपयुक्त बनाते हैं। चना में थोड़ा खट्टा स्वाद होता है जबकि मेथी स्वाद में कड़वी होती है।

उत्पादन तकनीकः

उगाने का माध्यमः माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन टोकरी या पॉट में किया जाता है। बाजार में कॉयर, लकड़ी, के फाइबर, छाल, पेपर फाइबर, पीट काई पर्लाइट, रॉक वूल, कोको पीट, वर्मीक्यूलाईट, वर्मीकम्पोस्ट, स्फाग्नम पीट जैसे माइक्रोग्रीन्स के उत्पादन के लिए कई चीजें बाजार में उपलब्ध हैं। उगाने के माध्यम से चयन सावधानी से किया जाना चाहिए जो इष्टतम अंकुरण की स्थिति प्रदार करे। आई आई वी आर में, 2:1:1 के अनुपात में कोको पीट, वर्मीक्युलाईट और पर्लाइट का मिश्रण माइक्रोग्रीन्स के वृद्धि के लिए बेहतर पाया गया। इस प्रकार बीजों की बुवाई से पहले मीडिया (टोकरी) को पूरी तरह से विसंक्रमित कर दिया जाना चाहिए, यदि इसमें रोगजनक जीव होने का संदेह हो। हीट पास्चराइजेशन के माध्यम से माइक्रोग्रीन्स उगाने में बढ़त मिल सकती है, और उसे पारंपरिक रूप से भाप द्वारा किया जाता है। कुछ माध्यमों जैसे, वर्मीक्यूलाईट और पेरीलाइट स्वाभाविक रूप से विसंक्रमित हैं, जिन्हें किसी पकार से विसंक्रमित करने की आवश्यकता नहीं है। हालाँकि, विसंक्रमित मीडिया भी व्यावसायिक रूप से उपलब्ध हैं। कभी–कभी बीज उपचार की सलाह दी जाती है। बहुत कम समय पूर्व कटाई के कारण, रासायनिक उपचार से बचा जाता है। ट्राइकोडर्मा हार्जियानम और टी विरेन जैसे जैव–नियंत्रण एजेंट के साथ बीज उपचार की सिफारिश की जाती है। हाल ही में हाइड्रोपोनिक तकनीकों का उपयोग माइक्रोग्रेन के उत्पादन के लिए किया गया है। हाइड्रोपोनिक्स पर किए गए शोध से पता चलता है कि पोषक तत्व फिल्म तकनीकों का उपयोग करके उत्पादित किए गए माइक्रोग्रोन्स में मीडिया वाले ट्रे की तुलना में अधिक उपज है।

बीज बोनाः माइक्रोग्रीन्स उत्पादन के लिए बीज ज्ञात स्त्रोत से एकत्र किए जाने चाहिए। कुछ माइक्रोग्रीन्स आसानी से अंकुरित हो जाते हैं और जल्दी से बढ़ते जाते हैं जैसे अल्फाल्फा,

मसूर दाल इत्यादि। उन्हें उच्च प्रकाश अधिमानतः प्राकृतिक धूप, कम नमी और अच्छे वायु परिसंचरण की आवश्यकता होती है। इस तरह की स्थितियां माइक्रोग्रीन्स के लिए आदर्श हैं और खतरनाक रोगजनकों के विकास को प्रोत्साहित नहीं करती हैं, जब गैर–विसंक्रमित मीडिया का उपयोग किया जाता है, तो बीज उपचार अनिवाय है। बीज बुवाई की दूरी इष्टतम होनी चाहिए। अत्यधिक बीज घनत्व के कारण माइक्राग्रीन्स के नरम बढ़े हुए या फैले हुए तनों और छोटे पत्तों वाले कम अचल जीवन वाले होते हैं। छोटे बीजों के लिए प्रति वर्ग इंच लगभग 10–12 बीज और बड़े बीजों के लिए 6–8 बीज अच्छे होते हैं।

उगाने की स्थितिः व्यावयायिक रूप से संबंधित स्थिति में माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन किया जाता है। इसमें उच्च प्रकाश की स्थिति, अधिमानतः कम धूप और अच्छे वायु परिसंचरण के साथ प्राकृतिक धूप की आवश्यकता होती है। कम रोशनी की स्थिति या कृत्रिम रोशनी के तहत उगाए गए लोगों की तुलना में उच्च प्रकाश वाले अधिक मजबूत, लंब समय तक चलने वाले और अधिक स्वादिष्ट माइक्रोग्रीन्स का उत्पादन करते हैं। हाल ही में विभिन्न वर्णक्रमीय रेंज और तीव्रता के साथ प्रकाश उत्सर्जक डायोड का उपयोग माइक्रोग्रीन्स के वृद्धि को ठीक करने के लिए किया गया है। लाल स्पेक्ट्रम प्रकाश पौधों को छोटा रखने के लिए उचित किया गया जबकि नीले स्पेक्ट्रम प्रकाश वनस्पति विकास को प्रोत्साहितक करते हैं। कभी–कभी एलईडी भी पूरक रचना को प्रभावित करती है जैसे पूरक ग्रीन एलईडी कैरोटीनॉइड के संचय को बढ़ा सकती ह, जैसे ल्यूटिन/जेक्सैन्थिन और बीटा–कैराटीन।

अन्तरवर्ती क्रियाएंः मीडिया को नम रखा जाना चाहिए, लेकिन अधिक गीला नहीं होनी चाहिए। प्लास्टिक ट्रे को ग्रीनहाउस के अंदर एक छिड़काव प्रणाली और 26^0 +- 2^0C के अनुकूल तापमान के साथ बेंचों पर रखा जाना चाहिए। बुवाई के तुरंत बाद, ट्रे सिंचित किया जाना चाहिए और आर्द्रता के स्तर को उच्च रखने के लिए 48 घंटे के लिए एक उल्टा slotted ट्रे के साथ कवर किया जाना चाहिए। रोपाई को सावधानी से दो बार दैनिक रूप से पानो दिया जाना चाहिए ओर कटाई तक नम रखा जाना चाहिए। आमतौर पर, खरपतवार और बीमारी की देखभाल नहीं की जाती है क्योंकि स्वच्छ विसंक्रमित मीडिया का उपयोग किया

जाता है और संरक्षित स्थिति में उगाया जाता है। थिनिंग आवश्यक नहीं है क्योंकि माइक्रोग्रीन्स घने रूप से उगाए जाते हैं।

कटाईः माइक्रोग्रीन्स की कटाई आमतौर पर उष्णकटिबंधीय मौसम में अंकुरण के बाद 7–14 दिनों में की जाती है, और ठंड के मौसम में थोड़े लंबे (14–28 दिन) अथवा समशीतोष्ण क्षेत्र जो ऊंचाई में 2.56 से 7.6 सेमी (1 से 3 इंच) की ऊंचाई पर होता है जो फसल से फसल और विविधता से विविधता और अन्य पर्यावरणीय परिस्थितियों में भिन्न होता है। ये कैंची की मदद से तने और संलग्न बीजपत्र–बीज के पत्तों के साथ काटे जाते हैं। यदि अधिक समय तक छोड़ दिया जाता है, तो वे तेजी से बढ़ाना शुरू कर देंगे आर रंग और स्वाद खो देंगे। कटाई के चरण में छँटाई, और वितरण अच्छी स्वच्छता प्रथाओं महत्वपूर्ण हैं। हार्वेस्टर्स को दस्ताने और कटाई करने वाले उपकरण जैसे कटर, कंटेनर और अन्य उपकरणों की आवश्यकता होगी, जो माइक्रोग्रीन्स के संपर्क में आने से पहले और बाद में उचित क्लींजर से साफ किये जाते हैं। दस्ताने के अलावा, उत्पाद के संपर्क में आने वलो लोगों को धोने योग्य या डिस्पोजेबल कपड़े और बाल ढकने के लिए आवरण दी जानी चाहिए। इससे संक्रमण के खतरे में कमी आएगी।

कटाई के बाद का कार्य– उच्च श्वसन दर के कारण माइक्रोग्रीन्स जल्दी खराब हो जाते हैं। फसल कटाई के बाद, तेजी से होने वाला वार्धक्य, इसके आयु को कम करता है, आमतौर पर सामान्य तापमान पर 3 से 5 दिन। इस प्रकार, फसल के बाद की उचित देखभाल आवश्यक है। कटाई के बाद, माइक्रोग्रीन्स के लिए प्री–कूलिंग का सबसे आसान तरीका हो सकता है। हाइड्रो–कूलिंग के समय Naocl (100 mg क्लोरीन बराबर/L,pH 6.5) के साथ माइक्रोग्रीन्स का उपचार अतिरिक्त माइक्रोबियल सुरक्षा देता है। उसके बाद नमी को हटा दिया जाता है और उत्पादों को प्लास्टिक कंटेनर में पैक किया जाता है। परिवर्तित वायुमंडलीय पैकेजिंग माइक्रोग्रीन्स के आयु को बढ़ा सकती है। हाइड्रो–कूलिंग और माइक्रोग्रीन्स की पैकेजिंग के दौरान किसी भी माइक्रोग्रीन्स के आयु को बढ़ा सकती है। हाइड्रो–कूलिंग और माइक्रोग्रीन्स की पैकेजिंग के दौरान किसी भी माइक्रोबियल संदूषण से बचने के लिए सावधानी बरतनी चाहिए। सभी पैकेजिंग, कंटेनरों को यह दिखाने के लिए

लेबलिंग की आवश्यकता होती है कि उत्पाद कहां से आया है और इसे कब तक उपयोग करना है। कटाई की तारीख देना उचित है। स्थानीय उत्पादकों के दृष्टिकोण से, पैक पर कटाई की तारीख होने से उत्पाद की ताजगी को सुदृढ़ किया जा सकता है। आमतौर पर माइक्रोग्रीन्स का सेवन कच्च किया जाता है, जो खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से गर्मी संवेदनशील सूक्ष्म पोषक तत्वों के नुकसान या अवनति को कम करता है। पकी हुई सब्जी के विपरीत, माइक्रोग्रोण में हमेशा सूक्ष्मजीव की संभावना होती है। इसलिए कटाई के बाद के कार्यों पर ज्यादा ध्यान दिया जाना चाहिए।

उपयोगः सलाद, सैंडविच, सूप में माइक्रोग्रीन्स का उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग इटालियन और चीनी फास्ट फूड को गार्निश करने के लिए किया जा सकता है। यह पराठे के लिए उपयुक्त सामग्री भी हो सकती है।

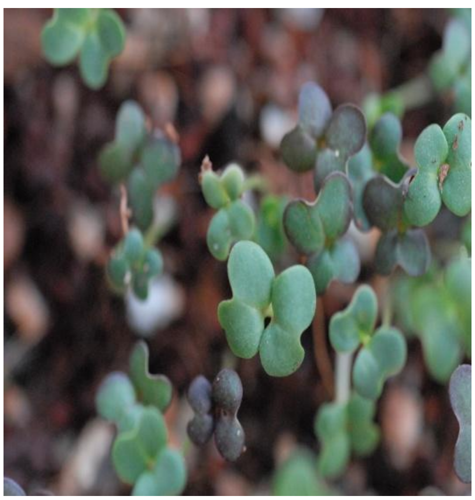 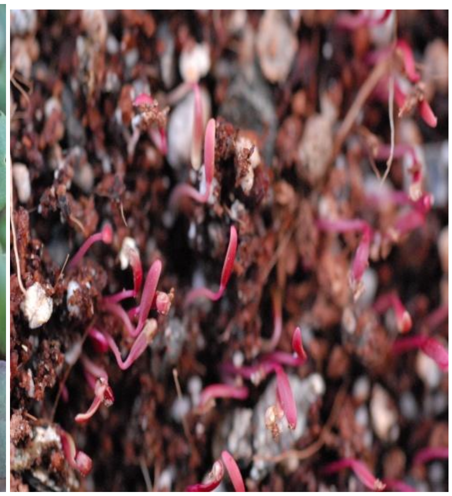

बतख पालन– आजीविका का संभावित स्रोत

रीना कमल[1] , पी.सी. चंद्रण[2], प्रदीप कुमार राय[3], रजनी कुमारी[4] एव अमिताभ डे[5]

[1,, 3, 4] वैज्ञानिक, [2]वरिष्ठ वैज्ञानिक, [5]प्रधान वैज्ञानिक,

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना बिहार–800014

घरेलु पोषण सुरक्षा भारत में विशेष रुप से संसाधन गरीब और आदिवासी किसानों के बीच एक प्रमुख मुद्दा रहा है। इस संबंध में, अंडे को गुणवत्ता प्रोटीन की मांग का एक प्रमुख योगदानकर्ता माना जाता ह। मुर्गी के बाद भारत में अंडे के उत्पादन मे योगदान देने वाली दूसरी सबसे बड़ी प्रजाति बतख को माना जाता है। कुक्कुट की विभिन्न प्रजातियों में, बतख प्रकृति में मजबूत और विपुल है। यह कुल पोल्ट्री आबादी का लगभग 10% हैं और देश के कुल अंडां का उत्पादन लगभग 6–7% योगदान करते हैं। गैर–वर्णनात्मक दशी बतख देश के पूर्वी और दक्षिणी राज्यों में मुख्य रुप से तटीय क्षेत्र में केंद्रित हैं एवं इनकी अंडा उत्पादन क्षमता कम होती हैं। संसाधन गरीब बतख किसानों की स्थायी आजीविका में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। बतख की आबादी में पश्चिम बंगाल, असम, केरल, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, बिहार एवं ओड़िशा राज्य अग्रणी है।

भारत में मुर्गी पालन के बाद बत्तखों का एक महत्वपूर्ण स्थान हैं। इंडोनेशिया के बाद भारत 2012 में लगभग 23 मिलियन की कुल बतख आबादी के साथ दुनिया में दूसरे स्थान पर है। हमारे देश के देशी बतख कुल बतख आबादी (BAHS, 2016) का 90% से अधिक का गठन करते हैं। बत्तख के योगदान का आकलन इस तथ्य से किया जा सकता है कि लगभग हर ग्रामीण घर में उनमें से एक जोड़े हैं और बत्तख के अंडे मुर्गियों की तुलना में उच्च कीमत प्राप्त करते हैं।

बत्तख पालन के निम्नलिखित फायदे हैंः–

- बतख मुर्गी की तुलना में प्रति वर्ष प्रति पक्षी अधिक अंडे देती है।
- बतख के अंडे का वजन मुर्गी के अंडे से लगभग 15 से 20 ग्राम अधिक होता हैं।
- बतख प्रबंधन प्रक्रिया अपेक्षाकृत सरल है और कूड़ा–करकट वाले स्थानों में भी अच्छी तरह से पाली जा सकती है।
- बतख बाहर घूम कर, धान के खेतों, कीड़ों, केंचुओं, छोटी मछलियों और अन्य जलीय पदार्थों म गिरे हुए अनाज खाते हैं। अतः इसके भोजन व्यवस्था पर आने वाला खर्च कम होता है।
- व्यावसायिक दृष्टिकोण से बतख का एक लंबा लाभदायक जीवन है। वे दूसरे वर्ष भी अच्छी तरह से अंडे देती है।
- बतख को मुर्गी जैसे किसी विस्तृत घर की आवश्यकता नहीं होती है।
- बतख, काफी निर्भीक एवं सहिष्णु होती हैं, से इसके चूजों की ब्रोडिंग हो सकती हैं और आम पक्षी रोगों के लिए अधिक प्रतिरोधी होती हैं।
- नदी का दल–दल किनारा, गीली भूमि और बंजर खाई जिस पर मुर्गी या अन्य कोई प्रकार का स्टॉक नहीं पाला जा सकता हैं, बतख के लिए उत्कृष्ट होता है।

- 95–98% बतख सुबह 9.00 बजे से पहले अंडे देती हैं। इस प्रकार बहुत समय और श्रम की बचत होती हैं।
- बतख एकीकृत कृषि प्रणालियों जैसे बतख–सह–मछली की खेती, चावल की खेती के साथ बतख की खेती के लिए उपयुक्त है। बतख–सह–मछली पालन में बतखों की लीद मछलियों के लिए चारा का आहार काम करती है और मछलियों के लिए तालाब की कोई दूसरी चारा या खाद आवश्यक नहीं होती (200–300 बतख प्रति हेक्टेयर अपशिष्ट क्षेत्र)। एकीकृत बत्तख पालन के तहत, चावल की खेती के साथ बत्तख चार अन्य आवश्यक कार्य भी करती हैं

- जुताई : जैसा कि वे भोजन की तलाश करते हैं, उनके बिल चावल पौधों के आसपास की मिट्टी को
  ढीला कर देते हैं,
- निराई : कीट नियंत्रण और खाद सुविधा। बत्तख आलू के बीटल, टिड्डे, घोंघे और स्लग के अच्छे संहारक हैं। लीवर फ्लूक वाले क्षेत्रों में, बत्तख समस्या को ठीक करने में मदद कर सकते हैं (2 से 6 बत्तख प्रति 0.405 हेक्टेयर भूमि)।
- मच्छर के प्यूपा और लार्वा से पानी के निकायों को मुक्त करने के लिए बत्तख का उपयोग किया जा सकता है (6 से 10 बत्तख प्रति 0.405 हेक्टेयर पानी की सतह की जरुरत होती हैं)।
- बत्तख काफी बुदधिमान होते हैं, आसानी से वश में किए जा सकते हैं, और तालाबों में जाने और अपनी शाम को वापस आने के लिए प्रशिक्षित किये जा सकते हैं।

नस्लें:–

अंडे देने वाली नस्लों में *खाकी कैंपबेल* सबसे अच्छी उत्पादक हैं। इस नस्ल से बारह महीनों में प्रति दिन प्रति बत्तख से लगभग एक अंडे लिया जा सकता हैं और प्रति वर्ष औसत 300 अंडे प्रति बत्तख लिया जा सकता है। खाकी कैंपबेल बत्तखों का वजन लगभग 2 से 2.2 (मादा) किलोग्राम और 2. 2 से 2.4 (नर) किलोग्राम तक होता है। अंडे का वजन 65 से 75 ग्राम तक होता है।

व्हाइट पेकिन दुनिया में सबसे लोकप्रिय बत्तख है जिसे मांस के उद्देश्य के लिए जाना जाता हैं। यह तेजी से बढ़ता है और मांस की गुणवत्ता के साथ कम फीड खपत है। जिसका फीड रुपांतरण अनुपात 1: 2.3 से 2.7 किलोग्राम हैं। यह 42 दिनों की आयु में लगभग 2.2 से 2.5 किलोग्राम शरीर वजन प्राप्त करता है।

इन्क्यूबेशन:–

खाकी कैंपबेल बत्तख की इन्क्यूबेशन अवधि 28 दिन है। कृत्रिम ड्राफ्ट ऊश्मायित्र या डिंबौपक में 37.5 से 37.2^{o}C (99.5 से 99^{o}F) के तापमान पर संतोषजनक परिणाम प्राप्त होते हैं। गीले–बल्ब का रीडिंग इन्क्यूबेशन के दौरान पहले 25 दिनों तक 30 से 31^{o}C (86 से 88 ^{o}F) और इन्क्यूबेशन के अंतिम

तीन दिनों के दौरान 32.7 से 33.8 ^{o}C (90 से 92 ^{o}F) हैचिंग के लिए होना चाहिए। अंडो पर गुनगुने पानी से छिड़काव किया जाना चाहिए जो दिन में एक बार 2 दिन से 25 वें दिन तक होता है और आधे घंटे की अधिकतम अवधि के लिए ठंडा होने के लिए सेंटर का दरवाजा खुला होना चाहिए। कैंडलिंग 7वें दिन की जाती है। अंडों को मशीन में ही प्रति घंटा घुमाया जाता है। 25 वें दिन अंडे को सेंटर से निकालकर तीन दिन के लिए हैचर में स्थानांतरित किया जाता है।

ब्रूडिंग (0–4 सप्ताह):–

खाकी कैंपबेल डकलिंग्स की ब्रूडिंग अवधि 3 से 4 सप्ताह है। पेकिन जैसे मांस प्रकार के डकलिंग्स के लिए, 2 से 3 सप्ताह के लिए ब्रूडिंग पर्याप्त है। ब्रूडर के अन्दर 90 से 100 वर्ग मीटर प्रति डकलिंग्स की होवर स्पेस प्रदान करनी चाहिये। पहले सप्ताह के दौरान 29 से 32^{o}C (85 से 90^{o}C) का तापमान बना रहना चाहिए। चौथे सप्ताह के दौरान 24 ^{o}C (75^{o}F) तापमान तक पहुंचने के लिए प्रति सप्ताह लगभग 3^{o}C कम किया जाना चाहिए।

बत्तख की ब्रुडिंग तार के फर्श, लकड़ो/बालू इत्यादि के किया जा सकता हैं। तार के फर्श पर प्रति पक्षी 0.046 वर्ग मीटर (1/2 वर्ग,फीट) या ठोस फर्श पर 0.093 वर्ग मीटर (1वर्ग,फीट) का स्थान 3 सप्ताह की आयु तक पर्याप्त होता है। पीने के बर्तन में पानी 5 से 7.5 सेमी. (2 से 3'') गहरा होना चाहिए, जो केवल पीने के लिए पर्याप्त हो और चूजे उसमे डूब न सके।

15–16 सप्ताह:–

डकलिंग्स गहन, अर्ध–गहन या रेंज सिस्टम में पाला जा सकता हैं। गहन प्रणाली के तहत, 16 सप्ताह की आयु तक 0.279 वर्ग मीटर (3 वर्ग,फीट) के फर्श की जगह दी जा सकती है। अर्थ–गहन प्रणाली के तहत, 16 सप्ताह की आयु तक प्रति पक्षी 0.186 से 0.279 वर्ग मीटर (2.5 से 3 वर्ग फुट) का फर्श स्थान घर के अंदर और 0.929 से 1.394 वर्ग मीटर (10 से 15 वर्ग फीट) प्रति पक्षी घर के बाहर खुले में देना सही होता हैं। आमतौर पर डकलिंग्स को मौसम के आधार पर 3 से 4 सप्ताह की आयु के बाद ही बाहर छोड़ना चाहिए। पीने के बर्तनों की गहराई 12.5 से 15 समी. (5'' से 6'') गहरा होना चाहिए जिससे बतख के सिर का न्यूनतम भाग ही जा पाये। पेन के अंदर और बाहर 60–90 सेमी. (2–3) की ऊंचाई तक विभाजन पर्याप्त है। रेंज सिस्टम के तहत 1000 के झुंड को 0.405 हेक्टेयर (एक एकड़) में पाला जा सकता है।

वयस्क बत्तख (17 सप्ताह की आयु से ऊपर):–

गहन प्रणाली के तहत, प्रति बत्तख 0.371 से 0.465 वर्ग मीटर (4 से 5 वर्ग फीट) का फर्श स्थान आवश्यक है, जबकी अर्ध–गहन प्रणाली में, रात में शेड के अंदर शटर में 0.279 वर्ग मीटर (3 वर्ग फुट) का फर्श स्थान और 0.929 से 1.394 वर्ग मीटर (10 से 15 वर्ग फीट) बाहरी रन/खुले के रुप में पर्याप्त होगा। गीले मैश के लिए 'V' आकार के फीडर में खिलाएं,10 से 12.5 सेमी. (4 से 5'') प्रति बत्तख

स्थान दें। लेकिन सूखे मैश/दाना या गोलीनुमा दाना खिलाने के लिए हॉपरों में, 5 से 7.5 सेमी. (2 से 3'') की दर से खिलान की जगह पर्याप्त होनी चाहिए। 20 सप्ताह की उम्र से बत्तख अंडे देते हैं। लगभग 95 से 98% बत्तख अंडे सुबह 9.00 बजे तक देते हैं। प्रत्येक तीन बत्तखों को 30X 30X 45 सेंटीमीटर (12 X 12 X 18 '') आकार का एक घोंसला बॉक्स प्रदान किया जाता हैं। अंडे देने वाली बत्तख नस्ल के लिए 1ड्रैक (नर बत्तख) और 6–7 बत्तख एवं मांस नस्लों में 1 ड्रैक और 4–5 बत्तख रखा जा सकता हैं। इष्टतम उत्पादन के लिए प्रति दिन 14 से 16 घंटे की फोटो अवधि/रोशनी होनी चाहिए। खुले जगह जिसकी कोई सीमा न हो, 1000 बत्तख प्रति साग के आधार पर 0.405 हेक्टेयर (एक एकड़) में रखे जाते हैं।

आवासः–

बत्तख को विस्तृत घरों की आवश्यकता नहीं होती है। घर अच्छी तरह हवादार, सूखा और चूहा से मुक्त होना चाहिए। छत शेड प्रकार, गैबल या आधे दौर की हो सकती हैं। इसमें ठोस या तार फर्श हो सकते हैं। तार फर्श प्रजनकों के साथ लोकप्रिय नहीं है।

अर्ध–गहन प्रणाली के तहत घर में खुली जगह होनी चाहिए क्योंकि बत्तख दिन के समय और यहां तक कि सर्दियों या बारिश के दौरान भी बाहर रहना पसंद करते हैं। आमतौर पर शेड और खुली जगह का अनुपात 1/4:3/4 होता हैं। जल निकासी प्रदान करने के लिए रन को धीरे से घरा से दूर ढलान देना चाहिए। 50 सेमी. (20'') चौड़ा और 15–20 सेमी. (6–8'') गहरे आकार का एक निरंतर जल चैनल का निर्माण शेड से दूर और उनके समानांतर दोनों छोर पर देना अच्छा होता हैं।

पानीः–

हालांकि बत्तख पानी के बहुत शौकीन है, लेकिन पानी किसी भी स्तर पर आवश्यक नहीं हैं। हालांकि, पीने वाले बर्तन पर्याप्त रुप से गहरा होना चाहिए ताकि ओ अपने सिर को उसमे डुबो सके लेकिन खुद को नहीं। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं, तो उनकी आँखें टेढ़ी–मेढ़ी और भद्दी लगने लगती है और अत्यधिक मामलों में अंधापन हो सकता हैं। इसके अलावा, वे समय–समय पर अपने बिलों को साफ करना और उन्हें धोना भी पसंद करते हैं।

भोजनः–

बत्तख सूखी मैश या सुखा और गोला मिला हुआ या गोली नुमा आकार के फीड पर अच्छे से पाले जा सकते हैं। सूखे मैश को अपेक्षाकृत अधिक निगलने में कठिनाई के कारण बत्तख गिले मैश को पसंद करते हैं। गोली आकार के फीड, हालांकि थोड़ा महंगा है, लेकिन इसके अलग–अलग फायदे हैं जैसे कि फीड की मात्रा में बचत, न्यूनतम अपव्यय, सुविधा और स्वच्छता की स्थिति में सुधार। बत्तख ग्रामीणों के लिए अच्छे हैं। रेंज, तालाब या पूरक ग्रीन फीड का उपयोग, फीड लागत को कम करता हैं।

बत्तख को बिना पानी के फीड नहीं देना चाहिए। पहले आठ हफ्तों के दौरान, पक्षियों को इच्छा अनुसार खाने के लिए छोड़ना चाहिए, लेकिन बाद में उन्हें दिन में दो बार खिलाया जाना चाहिए यानी पहल

सुबह और फिर देर दोपहर। खाकी कैंपबेल बत्तख की खपत 20 सप्ताह की आयु तक लगभग 12.5 किलोग्राम है। इसके बाद 120 ग्राम प्रति दिन प्रति पक्षी और इससे भी ज्यादा जो उत्पादन और हरे चारे की उपलब्धता पर निर्भर करता है।

अंडे देने वाली और मांस वाले बत्तख के लिए सुझाए गए पोषक तत्व, खाकी कैंपबेल बत्तख के लिए फीड पैमाने, औसत शरीर का वजन और मांस बत्तख की फीड खपत में पालन किए जाने वाले फीड फार्मूले निम्नलिखित हैं।

अंडे और मीट प्रकार के बत्तख के लिए सुस्पष्ट पोषक तत्व की आवश्यकताएं	**स्टार्टर बत्तख**	**ग्रोअर बत्तख**	**लेयर/अंडे देने वाले बत्तख**	**ब्रायलर/मांस वाले स्टार्टर बत्तख**	**ब्रायलर/मांस वाले फिनिशर बत्तख**
नमी, % (अधिकतम)	11.00	11.00	11.00	11.00	11.00
क्रूड प्रोटीन, % (न्यूनतम)	20.00	16.00	18.00	23.00	20.00
क्रूड फाइबर, % (अधिकतम)	7.00	8.00	8.00	6.00	6.00
नमी, % (अधिकतम)	11.00	11.00	11.00	11.00	11.00
एसिड अघुलंशील राख % (अधिकतम)	4.00	4.00	4.00	3.00	3.00
कैल्शियम, % (न्यूनतम)	1.00	1.00	3.00	1.20	1.20
फॉस्फोरस (उपलब्ध), % (न्यूनतम)	0.50	0.50	0.50	0.50	0.50
लिनोलिक, % (न्यूनतम)	1.00	1.00	1.00	1.00	1.00
लाइसिन, % (न्यूनतम)	0.90	0.60	0.65	1.20	1.00
मेथिओनिन, % (न्यूनतम)	0.30	0.25	0.30	0.50	0.35
मेथिओनिन, + सिस्टीन, %	0.60	0.50	0.55	0.90	0.70
चयापचय ऊर्जा(किलोकैलोरी/किलोग्राम) न्यूनतम।	2600	2500	2600	2800	2900
खनिज और विटामिनः					
मैंगनीज, मिलीग्राम/किग्रा.	90.0	50.0	55.0	90.0	90.0
आयोडीन, मिलीग्राम/किग्रा.	1.00	1.00	1.00	1.00	1.00
लोहा, मिलीग्राम/किग्रा.	120.0	90.00	75.00	12.00	120.00
जिंक, मिलीग्राम/किग्रा.	60.00	50.0	75.00	60.00	60.00

तांबा, मिलीग्राम/किग्रा.	12.00	9.00	9.00	12.00	120.00
विटामिन ए, आईयू/केजी	6000	6000	6000	6000	6000
विटामिन डी 3, आईयू/केजी	600	600	1200	600	600
थायमिन, मिलीग्राम/किग्रा.	5.00	3.00	3.00	5.00	5.00
राइबोफ्लेविन, मिलीग्राम/किग्रा.	6.00	5.00	5.00	6.00	6.00
पैंटोथेनिक एसिड, मिलीग्राम/किग्रा.	15.00	15.00	15.00	15.00	15.00
निकोटिनिक एसिड, मिलीग्राम/किग्रा.	70.00	60.00	60.00	70.00	70.00
बायोटिन, मिलीग्राम/किग्रा.	0.20	0.15	0.15	0.20	0.20
विटामिन बी–12, मिलीग्राम/किग्रा.	0.015	0.10	0.10	0.015	0.015
फोलिक एसिड, मिलीग्राम/किग्रा.	1.00	0.50	0.50	1.00	1.00
Choline, मिलीग्राम/किग्रा.	1300	900	800	1400	1000
विटामिन ई, मिलीग्राम/किग्रा.	15.00	10.00	10.00	15.00	15.00
विटामिन के, मिलीग्राम/किग्रा.	1.00	1.00	1.00	1.00	1.00
पीरिडॉक्सिन, मिलीग्राम/किग्रा.	5.00	5.00	5.00	5.00	5.00

नोट:1. पोल्ट्री फीड के लिए बीआईएस 1992 की आवश्यकताओं को एक गाइड के रुप मे लिया गया था।

2. बत्तख के लिए नियासिन (विटामिन–B3) की आवश्यकता मुर्गी की तुलना में अधिक है।

खाकी कैंम्पबेल के लिए फीड स्तर

	फीड का खपत/बत्तख/हफ्ते/किलो	**उम्र (हफ्ते में)**	**फीड का खपत/बत्तख/हफ्ते/किलो**
1.	0.115	**13**	0.595
2.	0.255	**14**	0.605
3.	0.425	**15**	0.630
4.	0.620	**16**	0.705
योग	1.415	**योग**	2.535
5.	0.720	**17**	0.615

6.	0.770	**18**	0.655
7.	0.785	**19**	0.665
8.	0.790	**20**	0.745
योग	3.065	**योग**	2.680
9.	0.690	**21**	0.775
10.	0.730	**22**	0.945
11.	0.755	**23**	0.950
12.	0.755	**24**	0.955
योग	2.930	**योग**	3.625

24 हफ्ते के बाद से फीड का खपत 120—130 ग्राम प्रति बत्तख प्रति दिन और उससे भी ज्यादा जो कि बत्तख के उत्पादन पर निर्भर करेगा।

बत्तख को पकड़ने के तरीकेः—

बत्तख को हमेशा उसकी गर्दन के सहायता से पकड़ना चाहिए, अचानक शरीर से पकड़ने से उसकी मौत भी हो सकती हैं

स्वास्थ्य कवरः—

बीमारी के माध्यमः—

1. गीला कूड़ा।
2. चारा और पानी।
3. संपर्क बंद करें।
4. दुषित उपकरण।
5. उपस्थित और आंगतुक।
6. वायु।
7. बाहरी परजीवी।
8. मुक्त चलने वाले पक्षी।
9. कृन्तकों और मक्खियों।

रोगों की रोकथाम के लिए सामान्य सिद्धांत।

1. रोग मुक्त झुंड से दिन पुरानी बत्तख का बच्चा।
2. उचित स्वच्छता की स्थिति बनाए रखें।
3. पर्याप्त चारा, पानी और फर्श की जगह आदि प्रदान करें।
4. कृन्तकों और जंगली पक्षियों आदि को घरों में प्रवेश करने से रोका जाना चाहिए।
5. नियमित टीकाकरण अनुसूची का पालन करें।
6. मृत पक्षियों का उचित निपटान।
7. फुटबाथ को प्रत्येक शेड के प्रवेश द्वार पर प्रदान किया जाना चाहिए।
8. तनाव प्रभाव कम करें।

9. साफ और पर्याप्त पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करें।

10. इसे सूखा रखने के लिए उपयुक्त कूड़े की सामग्री और आवधिक मोड़ का उपयोग आवश्यक है।

बीमारी फैलने के समय क्या किया जाना चाहिए।

1. बत्तखों की आवाजाही पर प्रतिबंध (बेचना और खरीदना)।
2. सख्त स्वच्छता उपायों का पालन करें।
3. पशु चिकित्सकों की मदद लें।

टीकाकरण सूचिः–

टीका का नाम	माध्यम	मात्रा	बत्तख के उम्र
बत्तख कॉलरा (पस्तयूरेल्लोसिस / Pasteurellosis)	चमड़े में (Subcutaneous) चूजो को / ducklings वयस्क / adults	1 ml. 2.ml.	3–4 सप्ताह अंतिम टीकाकरण के 1 महिने के बाद
बत्तख प्लेग / DUCK PLAGUE	चमड़े में (Subcutaneous) वयस्क / adults	1 ml.	8–12 सप्ताह

बत्तख का टीका

निम्ये टीके निम्न जगहों से उपलब्ध हो सकते हैः–

1. निदेशक, पशु चिकित्सा निवारक चिकित्सा संस्थान, रानीपेट, वेल्लोर जिला, तमिलनाडु राज्य.
2. निदेशक, पशु स्वास्थ्य और पशुचिकित्सा संस्थान, नंबर 37, बालगछिया रोड,कोलकता–700037.
3. निदेशक, पशु स्वास्थ्य और पशुचिकित्सा संस्थान, हेब्बल, बैंगलोर–560024.

टीका लगाने के लिए क्या करें क्या न करेंः–

- प्रतिष्ठित निर्माता से केवल वैक्सीन प्राप्त करें।
- उपयोग होने तक टोके / वैक्सीन को फ्रीज मे स्टोर करें।
- निर्माता द्वारा सुझाई गई उचित खुराक ही लें।
- टोके को मिलाने के 3–4घंटे के भीतर ही इस्तमाल में लाना चाहिए।
- समाप्ति की तारीख के बाद टीके का उपयोग न करें।
- टीकाकरण के समय, केवल स्वच्छ सीरिंज और सुइयों का उपयोग करें।
- दिन के ठंडे समय ही पक्षियों का टीकाकरण करें।

बत्तख के मुख्य्य बोमारियाँः–

बत्तख आम एवियन रोगों के प्रतिरोधी है। बत्तख की बीमारियां मुर्गी के समान होती हैं और कुछ दोनों के लिए सामान्य होती हैं, लेकिन बीमारी का कोर्स अलग–अलग हो सकता है। चूंकि मुर्गी के कुछ संक्रमण

बतख के लिए प्रेषित हो सकते हैं, इसलिए यह आवश्यक हैं कि विभिन्न प्रजातियों का सख्त अलगाव हो।

डक प्लेग / Duck Plague:–

वयस्क पक्षी ज्यादातर वायरस की बीमारी से प्रभावित होते हैं। यह ऊतक रक्तस्राव और शरीर के गुहाओं में मुक्त रक्त के साथ संवहनी क्षति की विशेषता हैं। आंत और गीजार्ड के लुमिना रक्त से भरे होते है। बीमारी का कोई इलाज नहीं है। पक्षियों को देश में उपलब्ध बत्तख प्लेग वैक्सीन द्वारा संरक्षित किया जा सकता हैं, जो 8–12 सप्ताह की आयु में दिया जाता है।
रोकथामः टीकाकरण द्वारा ।
उपचारः वायरल रोगों के लिए कोई उपचार नहीं हैं, माध्यमिक संक्रमण को रोकें।

डक वायरल हेपेटाइटिसः–

यह मुख्य रुप से 2 से 3 सप्ताह की उम्र के चूजो को प्रभावित करता हैं। बीमारी का कोई इलाज नहीं हैं। अंडे के उत्पादन की शुरुआत से पहले प्रजनन स्टॉक को वायरस के क्षीण तनाव से प्रतिरक्षित किया जा सकता हैं। एक दिन की आयु के चूजों को अटैनुटेड वायरस वैक्सीन से संरक्षित किया जा सकता है। यह बीमारी भारत में प्रचलित नहीं है।

डक कॉलराः–

यह एक संक्रामक बीमारी है, जो बैक्टीरिया जीव यूरेल्ला मुल्तोसिदा / Pasteurella Multocida की वजह से चार सप्ताह से अधिक उम्र के बत्तखों में होती है। भूख न लगना, शरीर का उच्च तापमान, प्यास, दस्त और अचानक मृत्यु हो जाना इसके प्रमुख लक्षण हैं। अधिकांश सामान्य घावों में पेरिकार्डिटिस, गठिया, पेटीचियल और इकाइमोटिक रक्तस्राव त्वचा के नीचे (गुलाबी त्वचा), आंतों के अंगों में, सीरियस सतह और आंत पर(हैमोरेजिक एंटराइटिस) होते हैं। लीवर और प्लीहा बढ़े हुए होते हैं।

सल्फा दवाओं से बीमारिया को नियंत्रित किया जा सकता है। पहले 4 सप्ताह की आयु में और फिर 18 सप्ताह पर पक्षियों को हैजा के टीके से टीका दें।
रोकथामः टीकाकरण द्वारा।

उपचारः

1. एरोसिन / Enrocin या
2. 30 मिलीलीटर सल्फा मेजाथिन / Sulpha Mezathine (33.1%) 5 लीटर पीने के पानी में या 30–60 मिलीलीटर सल्फा क्विनोक्सालिन / Sulpha Qninoxaline 5 लीटर पीने में 7 दिनों के लिए.
3. एरिथ्रोमाइसिन / Erythromycin या
4. रबट्रान ग्रेन्युलस / Rabatran Granules या
5. नियोडॉक्स–फोर्ट / Neodox-forte या

इन दवाओं को पशु चिकित्सक के दिशानिर्देशों के तहत प्रशासित किया जा सकता है।

बोतुलिस्म/BOTULISM:– युवा और वयस्क बत्तख में यह एक गंभीर समस्या है। यह जीवाणु के शरोर में प्रवेश के कारण होता है जो सड़े हुए पौधा में पनपता है।

रोकथामः सड़े हुए पौध के आस–पास बत्तख को न छोड़े।

उपचारः पीने के पानी में एप्सम नमक/Epsom salt का प्रयोग करें जो पानी को शुद्ध करने का काम करता हैं।

परजीवीः–

बत्तख आंतरिक परजीवी के प्रतिरोधी हैं। इसका प्रकोप केवल उन बत्तखों के बीच ज्यादा होता है, जो स्थिर पानी, अधिक भीड़ वाले तालाब और छोटी–छोटी जलधाराओं में जाते हैं। परजीवियों में फ्लूक, टेप वर्म और गोल कीड़े शामिल हैं। ये पक्षियों द्वारा पोशक तत्वों के आत्मसात में कमी और उनके द्वारा उत्सर्जित विशाक्त पदार्थों के कारण एनीमिया, लाल कोशिकाओ को नष्ट करते हैं। इनमें जूँ के कण, पिस्सू और टिक शामिल हैं। ये जलन और झुंझलाहट का कारण बनता हैं जिससे अंडे के उत्पादन में नुकसान होता है। वे कई रोग पैदा करने वाले जीवों को भी संक्रमित करते हैं।

अफ्लाटोक्सिकोसिस/AFLATOXICOSIS:–

यह अफ्लाटोक्सिन के कारण होता है जो mould Aspergillus flavus/मोल्ड एस्परगिलस फ्लेवस द्वारा उत्पादित होती है जो भंडारण में रखे मूंगफली,मक्का,चावल की पॉलिश और अन्य उष्णकटिबंधीय फोड जैसे फीडस्टफ में पाया जाता है। अच्छी तरीके से नहीं सूखे अनाज,बारिश और नमी का मौसम इसकी वृद्धि के लिए प्रयाप्त होता है। बत्तख अफ्लाटोक्सिन/aflatoxin फीड के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं। आमतौर पर पाए जाने वाले चार प्रकार के एफ्लाटॉक्सिन, बी1,बी2,जी1 और जी2 हैं। बी1 सबसे शक्तिशाली विष हैं। बत्तख के लिए न्यूनतम विशाक्त खुराक फीड में 0.03 पीपीएम या 0.03 मिलीग्राम प्रति किलोग्राम है। अफ्लाटोक्सिन जिगर में घाव पैदा करता हैं और उच्च एकाग्रता में मौजूद होने पर मृत्यु का परिणाम होता है। इसके कम खुराक लम्बे समय में सुस्ती, अस्वस्थता, हेपेटाइटिस और देरी से मृत्यु जैसे प्रभाव पैदा करती है। अफ्लाटोक्सिकोसिस के लिए कोई विशिश्ट उपचार नहीं हैं। जब अफ्लाटोक्सिन का स्रोत फीड से हटा दिया जाता है, तो पक्षी म तेजी से सुधार होने लगता है।

बकरी पालन : सूखे में आजीविका का सहारा

[1]एस.पी.एस. सोमवंशी वैज्ञानिक (पशुविज्ञान) एवं [2]दुष्यन्त कुमार राघव
कृषि विज्ञान केन्द्र, हमीरपुर (उ0प्र0)
बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय बाँदा
कृषि विज्ञान केन्द्र, रामगढ़ (झारखण्ड)
भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनुसंधान, पटना (बिहार)

गरीब की गाय के नाम से मशहूर बकरी हमेशा ही आजीविका के सुरक्षित स्रोत के रूप में पहचानी जाती रही है। खेती में पशुपालन एक महत्वपूर्ण अवयव के रूप में हमेशा से उपयोगी रहा है। सूखे के क्षेत्र मे इसका महत्व और बढ़ जाता है और उसमें भी बकरी पालन स्खे की दृष्टिकोण व छोटे किसानो के लिहाज में काफी प्रभावी है क्योंकि लागत कम होने के साथ ही साथ आजीविका के विकल्प भी बढ़ रहे हैं।

परिचय : खेती और पशु दोनो एक दूसरे क पयार्य है। खेती कम होने की दशा में लोगों की आजीविका का मुख्य साधन पशुपालन हो जाता है। बकरी छोटा जानवर होने के कारण इसके रख–रखाव का खर्च भी न्यूनतम होता है। सूखे के दौरान भी इसके खाने का इंतजाम आसानी से हो सकता है इसके साज संभाल का कार्य महिलायें एवं बच्चे भी कर सकते है और साथ ही आवश्यकता पड़ने पर इसे आसानी स बेचकर अपनी जरूरत भी पूरी की जा सकती है। मण्डला क्षेत्र में अधिकतर लघु एवं सीमांत किसान होने कारण यहां पर सभी परिवार एक या दो जानवर अवश्य पालते है, ताकि उनके लिए दूध की व्यवस्था होती रहे। इनमें गाय, भैंस, बकरी आदि होती हैं। विगत कुछ वषा से पड़ रहे सूखे की वजह से और बड़े जानवरों के लिए चारा आदि की व्यवस्था करना मुश्किल कार्य होने के कारण लोग बकरी पालन को अधिक तरजीह दे रहे ह। जंगल के किनारे बसे गांवों के लिए यह एक उपयुक्त एवं आसानी से हो सकने वाली आजीविका है, क्योंकि जंगलों में चराकर ही इनको पाला जाता है और गरीब परिवारों की रोजी रोटी आसानी से चल सकती है। इस प्रकार बकरी पालन क्षेत्रों के लिए एक मुफीद स्रोत है।

नस्लें : बकरी की जमुनापारी, बरबरी एवं ब्लेक बंगाल इत्यादि नस्लें होती है। लेकिन यहा पर लोग सूखा की स्थिति में देशी एवं बरबरी, जमुनापारी नस्ल की बकरियों का पालन करते है, जिनकी देख रेख आसानी से हो जाती है।

प्रक्रिया : बकरी को पालने के लिए अलग से किसी आश्रय स्थल की आवश्यकता नही पड़ती उन्हे अपने ही घर पर ही रखते है। बड़े पैमाने पर यदि बकरी पालन का कार्य किया जाये तब उसके लिए अलग से बाड़ा बनाने की आवश्यकता पड़ती है मण्डला क्षेत्र में अधिकतर लोग

खेती किसानी के साथ बकरी पालन का कार्य कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में ये बकरिया खेतों और जंगलों में घूम फिर कर अपना भोजन आसानी से प्राप्त कर लेती है। अतः इनके लिए अलग से दाना भूसा आदि की व्यवस्था बहुत न्यून मात्रा में करनी पड़ती है।

यह उल्लेखनीय है कि देशी बकरियों के अलावा यदि बरबरी जमुनापारी इत्यादि नस्ल की बकरिया होंगी तो उनके लिए दाना भूसी चारा की व्यवस्था करनी पड़ती है पर वह भी सस्ते में हो जाता है। दो पांच बकरी तक एक परिवार बिना किसी अतिरिक्त व्यवस्था के आसानी से पाल सकता है। घर की महिलाएं भी बकरी की देख रेख कर सकती है और खाने के बाद बचे खाने से इनक भूसा की सानी भी की जा सकती है। ऊपर से थोड़ा दाना मिलाने से इनका खाना स्वादिष्ट हो जाता है। बकरियों के लिए साफ सुथरी एवं सुखी जगह की आवश्यकता होती है।

प्रजनन क्षमता : एक बकरी लगभग डेढ़ वष की अवस्था में बच्चा देने की स्थिति में आ जाती है और 6–7 माह में बच्चा देती है। प्रायः एक बकरी एक बार में दो से तीन बच्चे देती है और एक साल में दो बार बच्चे देने से इनकी संख्या में वृद्वि होती है। बच्चे को एक वर्ष तक पालने के बाद बेचते ह।

बकरियों में प्रमुख रोग : देशी बकरियों में मुख्यतः खुरपका पेट के कीड़ों के साथ साथ खुजली की बीमारिया होती है। ये बीमारिया प्रायः बरसात के मौसम में होती है।

उपचार : बकरियों मे रोग का प्रसार आसानी से और तेजी से होता है अतः रोग लक्षण दिखते ही इन्हे पशु डाक्टर से दिखाना चाहिए। कभी कभी देशी उपचार से भी ठीक हो जाता है ।

बकरी पालन हेतु सावधानियां : जंगल़ क्षेत्र में बकरी पालन करते समय निम्न सावधानिया बरतनी पड़ती है। आबादी क्षेत्र में जंगल से सटे होने के कारण जंगली जानवरों का भय बना रहता है, क्योकि बकरी जिस जगह पर रहती है वहां उसकी महक आती है और उस महक को सूंघकर जंगली जानवर गांव की तरफ आने लगते हैं। बकरी के छोटे बच्चों को कुत्तों से बचाकर रखना पड़ता है। बकरी एक ऐसा जानवर है जो फसलों को अधिक नुकसान पहुचाती है इसलिए खेत में फसल होने की स्थिति में विशेष रखवाली करनी पड़ती है वरना खत खाने के चक्कर मे आपसी दुश्मनी बढ़ने लगती है।

बकरी पालन की समस्याएं : हालाकि बकरी गरीब की गाय होती है, फिर भी इसके पालन में कई समस्याएं आती है बरसात के मौसम में बकरी देख भाल करना सबसे कठिन होता है। क्योकि बकरी गीले स्थान पर नही बैठती है। और उसी समय इनमें रोग भी बहुत अधिक होता है। बकरी का दूध पौश्टिक होने के बावजूद उसमें महक आने के कारण मूल्य नही मिल पाता है। बकरी का रोजाना चराने के लिए ले जाना पड़ता है। इसलिए एक व्यक्ति को उसी की देख रेख के लिए रहना पड़ता है।

फायदे : सूखा प्रभावित क्षेत्र में खेती के साथ आसानी से किया जा सकने वाल यह एक कम लागत का अच्छा व्यवसाय है, जिससे मोटे तौर पर निम्न लाभ होते हैं। जरूरत के समय बकरियों को बेचकर आसानी से नगद पैसा प्राप्त किया जा सकता है इस व्यवसाय को करने के लिए किसी प्रकार की तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता नहीं पड़ती। यह व्यवसाय बहुत तेजी से फैलता है। इसलिए यह कम लागत में अधिक मुनाफा देने वाला है। इनके लिए बाजार स्थानीय स्तर पर ही उपलब्ध है। अधिकतर व्यवसायी गांव से ही आकर बकरी बकरे को खरीद कर ले जाते है।

कार्प मछलियों के पालन एवं देखरेख के उचित तरीके

प्रकाश चन्द्र,[1] सुरेंद्र कुमार अहिरवाल[2],

[1]कृषि विज्ञान केंद्र, सीतामढ़ी, बिहार

[2]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, पूर्वी क्षेत्र के लिए अनुसंधान परिसर, पटना, बिहार

आज पूरे विश्व में लगातार बढ़ती जनसख्या के कारण संतुलित आहार की एक बड़ी चुनौती बनकर सामने आ गई है। भारत में प्रोटीन के मुख्य स्रोत दाल हैं। परन्तु दिन पर दिन बदलते जलवायु से दालों एवं अनाजो के उत्पादन पर बुरा प्रभाव बढ रहा है। देश में बढ़ती जनसंख्या से प्रोटीन युक्त आहार की उपलब्धता एक बड़ी समस्या बन चुकी है। जिसको पूरा करने के लिये मत्स्य पालन एक अच्छा व्यवसाय उभर का सामने आ रहा है। भारत में मुख्यतः पाली जाने वाली मछलियों में तीन देशी एवं तीन विदेशी प्रजातियाँ है। रोहू (*लेविया रोहिता*), नैनी (*सिराइनस, म्रिगल*) भारतीय प्रजातियों एवं सिलवर कार्प (*हाईपाफथैलमिक्थिस मॉलिट्रिक्स*) ग्रास कार्प (*टीनोफैरिंगोडान आइडेला*) एवं चाइनिज कार्प (*साईप्रिन सकापियों)* में तीन विदेशी प्रजातियाँ है। वास स्थान के अनुसार कार्प मछलियों का वर्गीकरण उपरी सतह पर रहने वाली मछलियाँ लगभग पानी की उपरी सतह पर ही रहती ह। क्योंकि इनके मुँह के बनावट के अनुसार, मुँह का निचला जबड़ा बड़ा होता है। तथा उपरी जबड़ा निचले जबड़े की अपेक्षा छोटा होता है जिससे उपरी सतह का भोजन ग्रहण करने में आसानी होती है। बीच की सतह पर रहने वाली कार्प मछलियों म रोहू एवं ग्रास कार्प है। मह के बनावट के अनुसार इन दोनों मछलियों के उपरी एवं निचली जबड़ों की लम्बाई समान होती है, जिसमें मछलियाँ बीच का भोजन आसानी से ग्रहण कर लेतो ह। जिस कारण मछलियाँ लगभग बीच के भाग पर ही रहती ह। निचले सतह पर रहने वाली मछलियाँ में नैन एवं चाइनीज कार्प है। इन दोनों मछलियों के नीचे का जबड़ा छोटा

एवं उपर का जबड़ा बड़ा होता है। जिससे तल का भोजन ग्रहण करने में आसानी होती है। इसलिए मछली पालते समय यह ध्यान रहे कि तीनों सतह पर रहने वाली मछलियाँ ह कि नही, अन्यथा जिस सतह की मछली नही होगी उस सतह का उपयोग नही हो पाएगा और उत्पादन पर बुरा असर पड़ेगा।

तालाब का प्रबन्धन : बीज संचय के पहले कुछ महत्वपूर्ण पहलू है जिनका उत्पादन पर सीधा प्रभाव पड़ता है। जिनका विवरण निम्नवत दिया गया है

1 जलीय पौधों तथा भौवालो का उन्मूलनः तालाब से जलीय पौधों को निकालना अति आवश्यक होता है क्योंकि ये वनस्पतियाँ मत्स्य पालन में व्यवधान उत्पन्न करती है। वे तालाब में उपलब्ध भोज्य पदार्थो का ग्रहण करती है तथा रात के समय जलीय ऑक्सीजन का ग्रहण करती है जो मछलियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालतो है तथा कुछ बड़े जलीय जीव जैसे साँप, मेंढ़क, जलीय चिड़ियाँ ये जलीय वनस्पतियों में छिपकर अचानक मछलियों का पकड़ कर खा जाते है। ये जलीय पौधे निम्न प्रकार हः

- **सतह पर तैरने वाले पौधे** : इन पौधे की जड़ पानी पर तैरती रहती है। और हवा के बहाव के साथ पूरे तालाब पर तैरते रहते है जैसे :—जलकुम्भी, लेमना, पिस्तिया, एजोला इत्यादि।
- **जलमग्न पौधे** : इन पौधों का पूरा भाग पानी में डुबा रहता है तथा जड़े जमीन में लगी रहती है ये निम्न प्रकार है :— ओटेलिया, वैलिस्नोरिया, हाइड्रिला, सिरेटोफाइलम लेगारोसिफोर इत्यादि।
- **तालाब के किनारे एवं छिछले जल में पाये जाने वाले पौधे** : ये पौधे तालाब के किनारे उगते है। जड़े तली से लगी होती है एवं शेष भाग पानी के उपर आ जाता है या पानी पर ही तैरता है ये निम्न प्रकार है लिमनैथियम, आइयोमिया, फूसिया, मावर्सीलिया, कमल, हाथी घास इत्यादि।

2 वनस्पतियों का उन्मूलन : जलीय पौधों का उन्मूलन प्रायः चार प्रकार से कर सकते हैं।

- **हाथ से** : इस विधि में छोटे तालाबों के जलीय खरपतवार को आसानी से हंसिया, कटीले तार एवं रस्सी की सहायता से निकाला जा सकता है।
- **यांत्रिक विधि से** : आज देश में बड़ी–बड़ी मशीने उपलब्ध है जिनकी सहायता से बड़े–बड़े जलाशयों से वनस्पति का उन्मूलन आसानी से किया जा रहा है।
- **रासायनिक विधि** : इस विधि में जलीय वनस्पतियों की रोकथाम के लिए रासायनिक पदार्थो का उपयोग करते हैं जो आसानी से मिल जाये, जिनका मूल्य कम हो, जहरीली न हो, जिनका वातावरण पर उल्टा प्रभाव न पड़े।
- **जैविक विधि से** : हाथी घास के नियंत्रण के लिए ग्लाइफोसेट 3 किलोग्राम/हेक्टेयर के उपयोग से 2 सप्ताह में नियंत्रण मिल जाता है। तालाब के किनारे के पोधों के नियंत्रण के लिए 2,4 D @7–10 किग्रा/हेक्टेयर छिड़काव करने से 10 दिन में नियंत्रण हो जाता है। तथा आइपोमिया जलकुम्भी के नियंत्रण के लिए 2,4 Dका छिड़काव 8 किग्रा/हेक्टेयर की दर से करते हैं। ' शैवालों का नियंत्रण तालाब में अति आवश्यक होता है। क्योंकि इनकी अधिकता से मछलियों को तैरने म परेशानी हाती है तथा कभी–कभी ये ' शैवाल मछलियों के गलफड़ों में फस जाते हैं। और उनकी मृत्यु हो जाती है। इनके नियंत्रण के लिए सिमेजीन जो कि बाजारों में टेफेजाइन –50 के नाम से उपलब्ध है जिसकी 0.3 से 0.5 पी0पी0 एम0 मात्रा प्रभावकारी होती है। जो कि 6 से 10 किग्रा/हेक्टेयर 1 मीटर पानी की गहराई के अनुसार प्रयोग करते हैं। इस विधि में वनस्पतियाँ खाने वाली मछलियों का पालन करते हैं जैसे– ग्रास कार्प एवं कामन कार्प जो कि पौधों की जड़ों को अपने मुँह से उखाड़ देती है और पौधा सूख जाता है।

3 मांशाहारी एवं जंगली मछलियों का उन्मूलन : मांशाहारी एवं जंगली मछलियाँ जो कि पाली गई मछलियों को नुकसान पहुँचाती है। जैसे सौरी, सौर, गिरई (*चन्ना स्ट्राइटेस, चन्ना मरूतिमस, चन्ना पुन्केटेटस*) चीताला (*नोटोप्टेरस चिताला*) मागुर (*क्लेरियस बैटरैकस*) सिघीं (*हेटरोप्न्यूसटिस फासिलिस*) पढ़िनी (*वलैगो अटटू*)। जबकि जंगली मछलियाँ में पोठिया (*पुन्टियस प्र0*) चेल्हवा (*अक्सीगैस्टर प्र0*) चन्दा, *अम्वैसिस स्पीशीज, कोलिसा, स्पीशीज* इत्यादि।

नियंत्रणः इनके नियंत्रण के लिए यदि तालाब से पानी का बहाव निचला हो तो पानी के निकास स्थान पर जाल लगाकर पूरा पानी निकाल कर उसमें उपस्थित मछलियों को पकड़कर खाने में प्रयोग कर लेते हैं। यदि ज्यादा हो तो बाजार में बच देते हैं। यदि पानी का निकालना सम्भव नही है तो इस दशा में कुछ हर्बल और रासायनिक पदार्थो का पिसीसाइड के रूप में प्रयोग करते हैं जो आदमी के लिए हानिकारक न हो, कम दिन तक असर करें, इससे मरी मछलियाँ आदमी खा सकें। महुआ(*Bassia latifolia*) की खली जिसमें 4–6 प्रतिशत सेपोनिन (मॉरिन) जहर के रूप में उपस्थिति होती है। जो कि श्वसन तंत्र के रास्ते के खून में मिल जाता है जिससे मछली मर जाती है। महुआ की खली को 2000–2500 किग्रा / हेक्टेयर की दर से प्रयोग करेन से सारी मछलियाँ मर जाती है। और विष का प्रभाव 10–15 दिन तक रहता है।

4 जलीय कीटों का उन्मूलन : मछली पालन में जलीय कीटों का प्रकोप बहुत ज्यादा रहता है हालाकि संचय तालाबों में ये कोई ज्यादा नुकसान नही कर पाते क्योंकि मछलियाँ बड़ी होती है लेकिन नर्सरी तालाबों में ये कीड़े बहुत हानिकारक है ये फ्राइ एवं फिंगरलिंग को पकड़कर मार देते हैं और खा जात है। इसलिए कीटों का उन्मूलन तालाब से अति आवश्यक होता है। ये कीड़े जैसे – ड्रगन फ्लाई, पीछे की ओर तैरने वाला वग, सिविस्टर लार्वा, जल बिच्छू, जल काठी कीड़ा इत्यादि।

- **नियंत्रण विधि** : जालों का प्रयोगः–महीन जालीदार कपड़ों से बने जाला को बार–बार चलाकर कीड़ों की संख्या को कम किया जा सकता है।
- **तेल और साबुन के घोल का प्रयोग** :जलीय कीड़ों को नियंत्रण के लिए तेल और साबुन का घोल बनाकर जल की सतह पर एक समान छिड़काव कर देते हैं। जब कीड़े ' श्वसन के लिए उपरी सतह पर आते हैं तो ' श्वसन के समय साबुन तेल का घोल कीड़ों के ' श्वसन तंत्र में चला जाता है जिससे कीड़े मर जाते हैं। कीड़े पानी में घलित ऑक्सीजन का उपयोग नही कर पाते इसलिए उपरी सतह पर श्वसन के लिए आते हैं। इसमें 56 किग्रा सस्ता वनस्पति तेल एवं 18 किग्रा साबुन / हेक्टेयर का घोल बनाकर बीज संचय से 12–25 घंटे पहले प्रयोग करते हैं।

तालाब में खादों का प्रयोगः

भारतीय मछलियों के प्रथम अवस्था में बच्चे तालाब में उपलब्ध जलीय जन्तु उत्पल्वक को ही खाते है इसलिए बीज संचय से पहले यह जान लेना चाहिए कि तालाब में जन्तु उत्पलवको की मात्रा है कि नही। जन्तु उत्पलव की संख्या बढ़ाने के लिए खाद का प्रयोग तालाब में जरुरी है। उर्वरकों में नाइट्रोजन 100 किलो/है0/वर्श (3 किला यूरिया/कट्ठा) फॉस्फेट 25 किग्रा/है वर्श (2.5 किलो एस0एस0पी0/कट्ठा) तथा 90 किलो/है0/वर्ष पोटाश (2.5 किलो/कट्ठा) की आवश्यकता होती है। कार्बनिक खादो में ताजा गाय का गोबर 10 टन/हे. के हिसाब (200 किग्रा/कट्ठा) से प्रयोग करते हैं। यदि मुर्गी की खाद उपलब्ध हो तो इसकी 7 टन/हे. के हिसाब से प्रयोग करते हैं। अब सारे उर्वरक की मात्रा का 30 प्रतिशत भाग बीज संचय के 15 दिन पहले करते ह ताकि जलीय उत्पलवको की संख्या समय पर बढ़ जाये बाकी को शेष मात्रा का 3–4 बराबर भागों में बाँटकर 2 महोने के अन्तराल पर करना चाहिए। इसमें बची खाद में एक महोने में कार्बनिक खाद तथा दूसरे महीने में रासायनिक खाद का प्रयोग किया जाना चाहिए। ऐसा करने से तालाब में लगातार पोषक तत्वों की मात्रा बनी रहती है। इस बात का ध्यान रहे कि जाड़े के दिनों में खाद एवं भोजन की मात्रा को देना कम कर दिया जाता है। जाड़े में मछली मात्र जीवन निर्वाह के लिए भोजन खाती है। जो तालाब से उपलब्ध हो जाता है।

अंगुलिकाओं का संचयः

संचय के समय यह ध्यान रहे कि तालाब के क्षेत्रफल के अनुसार कितनी मछलियाँ आराम से उस तालाब में रह सकती है। क्योंकि सारी मछलियों की आवश्यकताए उसी पानी के क्षत्रफल से प्राप्त करनी है। मिश्रित पालन में 10000–12000 अंगुलिकायें/हे. के हिसाब से संचय करना चाहिए। जिसमें 30–40 प्रतिशत उपरी सतह पर रहने वाली मछलियाँ (कतला और सिलवर)30–35 प्रतिशत बीच में रहने वाली (रोहू) तथा 30–40 प्रतिशत तली में रहने वाली मछलियाँ (नैन और कामन कार्प) का संचय करना अच्छा रहता है। यदि तालाब में जलीय घास है तो 5–10 प्रतिशत ग्रास कार्प का संचय कर देना चाहिए। संचय प्रायः सुबह या ‘ शाम में करना चाहिए। संचय के पहले अंगुलिकाओं वाली पालीथीन बैग को उसी तालाब में मुँह बंधा डाल देना अति आवश्यक है जिससे तालाब और पालीथीन बैग के पानी का तापमान समान हो जाये। फिर पालीथीन का मुँह खोलकर 1–2 ग्राम पोटैशियम परमैगनेट का घोल बनाकर उसी बैग मे डाल कर हल्का हिलाकर बीज को तालाब में डाल दीजिए ऐसा करने से बीज रोग मुक्त हो जाता है।

पूरक आहार का प्रयोगः

तालाब में कितनी पूरक आहार की मात्रा देनी है यह तालाब में उपस्थित प्राकृतिक भोजन पर निर्भर करता है। अब हमें कितना पूरक आहार देना है इसके लिए प्लवकों की कितनी संख्या तालाब में उपस्थित है यह जानना अति आवश्यक है। इसके लिए हम ग्लेवेनाइज और बोल्टिंग कपड़े से बने जाल का प्रयोग करते हैं। एक लीटर वाले मघ की सहायता से तालाब के पूरे भाग से एवं विभिन्न गहराई से 50 लीटर पानी छान लेते हैं। 50 लीटर पानी में उपस्थित प्लवक जाल के नीचे लगे शीशे की लगी परखनली में आ जाते हैं और उसमे दो बूँद फार्मेलिन डालकर सभी उत्पलवकों को मार देते हैं। यदि 2 से0मी0 प्लवकों की संख्या 50 लीटर पानी में तालाब में उपलब्ध है तो पूरक आहार की आवश्यकता नही है। यदि 2 से0मी0 से कम है तो पूरक आहार की आवश्यकता पड़ती है। मछलियाँ सामान्यतः 2 से 3 प्रतिशत अपने ' शरीर भार का भोजन खाती है, मछलियों को 25 से 30 प्रतिशत प्रोटीन वाले भोजन की आवश्यकता होती है इसके लिए आस–पास में उपलब्ध मक्का, चावल की खन्डी, चावल की पॉलिस, सरसों की खल्ली, सोयाबिन आदि अनाजों से मछली का भोजन बना सकते हैं। मछलियों के उत्पादन का 60 प्रतिशत भाग, भोजन पर खर्च आता है।

पूरक आहार देने की विधिः

जब मछलियों के मूँह का आकार छोटा होता है उस समय मोटा पीसा हुआ भोजन देते हैं। मछलियों के भोजन देने का समय एवं स्थान रोज एक ही होना चाहिए, ऐसा करने से सारी मछलियाँ उस समय उसी स्थान पर रोज एकत्रित हो जाती है। जब मछलियों का आकार बड़ा हो जाये ता उस समय भोजन देने की विधि को बदलना आवश्यक हो जाता है इसके लिए एक प्लास्टिक या लोहे की टोकरी को तराजू की तरह भोजन को टोकरी में रखकर हल्के पानी से मिलाकर तालाब की तीन जगह अलग–अलग गहराईयों पर लटका देते हैं।

मछलियों की निकासीः

सामान्यतः मछलियों की निकासी 10 से 12 महीनों में करते ह। जब उनका भार 800 ग्राम से 1 किलोग्राम हो जाए। मछलियों की निकासी से पहले उनकी बिक्री की व्यवस्था समुचित रूप से करने के बाद ही निकासी करना उचित रहता है। मछलियों को 1

वर्ष से उपर तालाब में नही रखना चाहिए क्योंकि उनकी बढ़वार कम होती है और भोजन ज्यादा खाती है। जो कि व्यवसायिक दृष्टिकोण से अच्छा लाभ नही हो पाता है।

सामान्य जानकारीः

तालाब में किसी भी स्थिति में विगहेड कार्प को नही डालना चाहिए। इसके डालने से विगहेड कार्प की तो अच्छी बढ़वार होती है परन्तु दूसरी मछलियों की बढ़वार नही हो पाती है क्योंकि ये मछली दूसरे मछलियों का भी आहार बहुत तेजी से खाती है। जिससे दूसरी मछली नही बढ़ पाती है।

वर्मी कम्पोस्ट—एक गुणकारी खाद

शिवानी, संजीव कुमार, कीर्ति सौरभ और शुभा कुमारी

भा.कृ.अ.प. का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

हमारा देश कृषि प्रधान देश है एवं कृषि ही जीवन का आधार है। वर्तमान समय में हम अन्य उत्पादन में आत्मनिर्भर हो चुके हैं—परन्तु एक ओर जहाँ देश की जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है वहीं दूसरी ओर मृदा की उत्पादकता कम होती जा रही है। ऐसी स्थिति में बढ़ती आबादी की खाद्य सुरक्षा के लिए खाद्यान्य उत्पादन में बढ़ोत्तरी लाना अत्यावश्यक हो गया है। फलस्वरूप किसान उत्पादन बढ़ाने के लिए अपने खेता में अधिकाधिक रासायनिक खादों का इस्तेमाल कर रहे हैं।

परिचयः

आज खेती के लिए आवश्यक खाद एवं कीटनाशक रसायनों की बढ़ती हुई खपत ने कई जटिल समस्याओं को जन्म दिया है। विभिन्न प्रकार के प्रदूषण का फैलना, जल की कमी, कूड़ा—करकट तथा कचरे की मात्रा में हा रहे लगातार वृद्धि जैसी समस्याओं ने मनुष्य और पर्यावरण के समक्ष भयंकर स्थिति उत्पन्न कर दी है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिए यह जरूरी हो गया है कि हम वैकल्पिक साधनों का प्रयोग अभो से प्रारम्भ कर दें। जैविक खाद का उपयोग हमारे समक्ष एक ऐसा ही वैकल्पिक उपाय है जिसके द्वारा हम टिकाऊ खेती कर कृषि एवं पर्यावरण दोनों के साथ—साथ स्वयं को भी खुशहाल बना सकते हैं। जैविक खाद, जिनमें वर्मीकम्पोस्ट का उत्पादन सबसे सरल एवं उत्तम है।

सरल शब्दों में कृत्रिम विधि द्वारा केंचुआ पालने को वर्मी कल्चर और इन्हीं केंचुए द्वारा बेकार कार्बनिक पदार्थों से जैविक खाद मिलने की प्रक्रिया हो वर्मी कम्पोस्टिंग कहते हैं। कृत्रिम विधि से केंचुए पालना (वर्मीकल्चर) और केंचुए की मदद से जैविक खाद बनाना दो अलग—अलग परन्तु मिली—जुली क्रियायें हैं। इस क्रिया को वर्मी टेक्नोलॉजी कहते हैं। वर्मी कल्चर ओर वर्मीकम्पोस्टिंग का सही उपयोग हमारी कृषि के लिए वरदान साबित हो सकता है, क्योंकि केंचुए सड़ते—गलते पदार्थ को जैविक खादमें तब्दील कर देते हैं।

वमीकम्पोस्ट में पोषक तत्वों की मात्राः वर्मीकम्पोस्ट में सारे पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहते हैं।

साधारणता वर्मीकम्पोस्ट में कम्पोस्ट की खाद की अपेक्षा नाईट्रोजन पाँच गुणा, फॉस्फेट डेढ़ से दो गुणा, पोटाश दो से ढ़ाई गुणा एव जिंक ढ़ाई से तीन गुणा पाया जाता है। इसमें कैल्शियम प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

हमारे देश में केंचुए की दो प्रजातियाँ वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन के लिए उपयुक्त हैं और व्यवहार में लायी जा रही है। ये हैं–एसिना फेटिडा एवं यूड्रिलस यूजिनी।

एसिना फेटिडाः इन्हें लाल केंचुआ, गुलाबी केंचुआ या वर्मीकम्पोस्ट केंचुआ भी कहा जाता है, क्योंकि वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन साधारणतया इन्हीं केंचुओं से किया जाता है और इन्हें देखभाल की भी जरूरत नहीं पड़ती। इनका जीवन चक्र बहुत छोटा होता है और इनकी प्रजनन क्षमता काफी अधिक होती है। बहुत सारे सड़े–गले पदार्थों पर ये अपना जीवन चक्र चलाते हैं। एक दिन में एक केंचुआ तकरीबन 7 मिग्रा. बेकार पदार्थ को कम्पोस्ट बना देता है। इन केंचुओं की वृद्धि काफी तेजी से होती है। एक व्यस्क केंचुआ प्रत्येक तीसरे दिन पर एक कूकून बनाता है और एक कूकून से 23 दिन के अंदर 1 से 3 बच्चे बनते हैं। इनकी आयु 70 दिनों की होती है।

यूड्रिलस यूजिनीः इन केंचुओं का रंग जानवरों के मांस की तरह होता है। ये भूरे, लाल और हल्के बैंगनी रंग के भी होते हैं। 40 दिनों में ये वयस्क बनते हैं और प्रत्येक दिन कए कूकून बनता है जिसमें से 1 से 5 बच्चे बनते हैं। इनकी आयु 1 से तीन साल तक की होती है। ये अधिक तापमान को बर्दाश्त करते हैं। इनकी बढ़वार काफी तजी से होती है और यह दूसरा सबसे ज्यादा वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन के इस्तेमाल में आनेवाला केंचुआ है।

रूपान्तरणः

- 1 किलो केंचुआ 30–35 किलो कचरे को एक सप्ताह में कम्पोस्ट बना देता है।
- 1 किलो कचरे से आधा किलो वर्मीकम्पोस्ट तैयार होता है।

कम्पोस्ट बनाने की विधिः

वर्मी कम्पोस्ट का उत्पादन या तो पक्के पिट में या लकड़ी तथा प्लास्टिक केट में भी किया जा सकता है।

1. सबसे पहले एक टैंक का निर्माण करें जिसका आकार केंचुए की प्रजाति पर निर्भर करता है। एपिलाईक केंचुए की प्रजाति पर निर्भर करता है। एपिजाईक केंचुओं के लिए 30 फीट लम्बा, 3.5 फीट चौड़ा एवं 2.5 फीट गहरा टैंक होना चाहिए जबकि एनिसिक केंचुओं के लिए 30 फीट लम्बा, 3.5 फीट चौड़ा एवं 3.5 फीट गहरा टैंक चाहिए।
2. सबसे नीचे एक पॉलीथीन की शीट बिछायें।
3. इसके ऊपर 15 सेमी. अच्छी नमी वाले दोमट मिट्टी की तह बिछायें।
4. इसके ऊपर 2 से 3 इंच कचरा डालें।
5. अब इसके ऊपर 2 से 3 इंच हल्का सड़ा हुआ गोबर डालें।

6. इस पर हल्के पानी का छिड़काव करें।
7. अब 50–75 केंचुए डाल दें।
8. इसके ऊपर कचरा और गोबर डालकर पूरा टेंक भर दें। जूट के बोरे से या सूखी घास/पत्ती या पुआल से ढक दें ताकि अंदर की नमी नहीं उड़ तथा केंचुए को कार्य करने हेतु अंधकार एवं ठंढक वाली जगह मिल सके।
9. इसे सप्ताह में एक बार पलटते रहें एवं प्रतिदिन पानी का छिड़काव करते रहें।
10. 6 से 8 सप्ताह में यह कचरा वर्मीकम्पोस्ट में बदल जायेगा।
11. खाद बन जाने पर यह बिल्कुल चाय की पत्ती की तरह बन जाएगा जिसकी महक मिट्टो की तरह होगी।
12. खाद निकालकर छायेदार जगह पर ढेर कर दें और थोड़ा सूखने के बाद 2 मिमी. साइज की जाली से छान लें।
13. इस तैयार खाद में 20–25 प्रतिशत तक नमी होनी चाहिए।
14. तैयार वर्मीकम्पोस्ट से केंचुओं को अलग करने के लिए कम्पोस्ट के ऊपर 5–6 दिन पुराना गोबर कहीं–कहीं डाल दें। सारे केंचुए उसमें आ जायेंगे और इस तरह उन्हें अलग कर सकते हैं।

जाली से छानने पर छोटे केंचुए और उसके कूकून अलग हो जाते हैं जिन्हें फिर से नये पिट में डालकर वर्मीकम्पोस्ट बनाया जाता है।

15. एक ही पिट में दोनों तरह के केंचुओं को डालने पर खाद का निर्माण तेजी से होता है। एपीजाइक ऊपर के कचरे को खाते हैं और एनिसिक नीचे वाले कचरे को।
16. वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन के साथ–साथ वर्मीवाश का भी उत्पादन होता है, जिसके लिए पिट के नीचे वाली जमीन को एक तरफ थोड़ा–सा नीचे बनाते हैं और दीवार में नीचे एक छोटा–सा पाइप जो नीचे की तरफ मुड़ा हो, लगा देते हैं। अब इस पाइप के नीचे गड्ढा बनाकर एक मिट्टो का घड़ा रख देते हैं जिसमें वर्मीवाश एकत्र होता रहता है।

केंचुओं को क्या न खिलायें:

वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन हेतु सामग्रियों में धातु, प्लास्टिक, रसायन, तेल, साबुन, पेंट, प्लाज, लहसुन, नींबूवर्गीय फल, गर्म पदार्थ, मीट, मूर्गा, मसालेदार पदार्थ, कीटनाशी और खरपतवारनाशी उपचारित पौधे इत्यादि का इस्तेमाल बिल्कुल नहीं करना चाहिए।

वर्मी कम्पोस्ट देखने में दुर्गन्धरहित काला चाय के गोल दाने जैसा, छूने पर हल्का भुरभुरा होता है।

वर्मी कम्पोस्ट तैयार होने में लगभग दो माह का समय लगता है परंतु यथा सम्भव वर्मीकम्पोस्ट जैसे–जैसे तैयार हो, अलग कर लेनी चाहिए क्योंकि इस उत्सर्जित कास्ट का उपयोग केंचुए नहीं करते हैं और उनके लिए यह हानिकारक भी हाता है।

वर्मी कम्पोस्ट की पैकिंगः

वर्मी पीट/ टैंक/ ढ़ेर से निकाले गये कम्पोस्ट को 3–4 दिनों तक छाया में सुखाकर बालू चालने वाली महीन तार की जाली से छान लेना चाहिए जिससे छोटे केंचुए, कोकून एवं बिना खाये हुए व्यर्थ पदार्थ अलग हो जाए जिसे पुनः वर्मी बेड मे मिला दिया जाता है। अब छनी हुई कम्पोस्ट को प्लास्टिक या जूट के थैलों में भरकर रख लें। तैयार एवं भंडारित कम्पोस्ट में 7–8 प्रतिशत नमी होनी चाहिए। इसका भंडारण ठंढ़ा शुष्क एवं छायादार स्थानों में करना चाहिए।

केंचुआ खाद प्रयोग के सामान्य दिशा निर्देश।

पाधे लगे गमलों में: एक से दो माह पुराने गमलों की दो ईंच ऊपरी मिट्टी हटाकर गड्डों में केंचुआ खाद भरकर हल्की सिंचाई कर दें।

अन्य गमलों में: रोपित पौधे जिसकी मिट्टी हटाने से उसके सूख जाने की या घर का फर्श होने की संभावना को वहाँ प्रति किलो केचुआ खाद को 5 लीटर पानी में घोल बनाकर आवश्यकतानुसार सिंचाई कर दें।

कटिंग उगाने में: तीन भाग बालू में एक भाग केंचुआ खाद मिलाकर पॉलीथीन की छोटी–छोटी थैलियों में भरकर छोटे–छोटे छिद्र बना दें, तत्पश्चात् कटिंग लगाकर हल्की सिंचाई कर दें।

नर्सरी क्यारियों से: बीजों की प्रकृति के आधार पर जमीन की मिट्टी को 2 से 4 ईंच गहरा खोद कर 5 से 8 किलो केंचुआ खाद प्रति वर्ग मीटर क्षेत्र के अनुसार मिट्टी में मिलाकर बीजाई करें।

बागवानीः

फलदार वृक्षों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए केंचुआ खाद एवं गोबर की खाद को बराबर मात्रा में मिश्रित कर पौधे के चारों तरफ गड्ढा बनाकर मिश्रण को डालना चाहिए और इसे पानी स नम करना चाहिए। ध्यान रखें दीमक न लगने पाये (नीम की खली का प्रयोग करें) ।

सजावटी पौधे में: 2 भाग केंचुआ खाद एवं 3 भाग उद्यान की मिट्टी का मिश्रण बनाकर पौधे लगायें।

फल युक्त वृक्षों में: 5 किलो केंचुआ खाद इतनी ही मात्रा में गोबर को खाद मिश्रित कर फलदार पेड़ों के आसपास की मिट्टी में मिलाकर आवश्यकतानुसार सिंचाई करें।

सब्जी की फसल में: तैयार खेत में बुआई के पहले 30 से 35 क्विंटल केंचुआ खाद/एकड़ क्षेत्र के अनुसार दोपहर बाद खेतों में डालें एवं सुबह हल चलाकर पाटा लगा दें। तत्पश्चात् सब्जी लगायें।

कृषि फसलों में: सामान्यता केंचुआ खाद गोबर की खाद बराबर मात्रा में 5 क्विंटल/एकड़ की दर से पयोग किया जाता है।

औषधीय पौधों में: औषधीय पौधों की खेती (छमाही फसल) हेतु 30 क्विंटल केंचुआ खाद एवं 125 से 150 किलो पिसी हुई नीम की खल्ली मिश्रित कर प्रति एकड़ खेतों में प्रयोग करें।

तिलहन फसलों में: तैयार खेत में बुआई के पहले 8 से 10 क्विंटल केंचुआ खाद/एकड़ की दर से भली प्रकार मिश्रित कर बीजाई करें।

नगदी फसलों (गन्ना, सूरजमुखी, मिर्च) में: तैयार खेत में बुआई के पहले 15 से 20 क्विंटल केंचुआ खाद/ एकड़ की दर से एक समान मिश्रित कर बीजाई करें।

वर्मीकम्पोस्ट इस्तेमाल करने से होने वाले फायदे:

1. वर्मीकम्पोस्ट अधिक किफायती होने के साथ–साथ भूमि की उर्वराशक्ति भी बढ़ाती है।
2. इसके प्रयोग से सब्जियों, फल एवं फूलों वाली फसलों में बीज जमाव अपेक्षाकृत जल्दी होता है एवं पौधे की बढ़वार भी अच्छी होती है।
3. इस खाद के प्रयोग से मिट्टी की जलधारण क्षमता बढ़ती है।
4. भूमि की भौतिक दशा में सुधार होता है एवं भूमिगत जल वायु के संचार में सुधार होता है।
5. यह गोबर की खाद की तुलना में चार गुणा ज्यादा पौष्टिक होता है।
6. पौध की बढ़वार अच्छी होने से पौधरक्षक दवाइयाँ कम लगती है जिससे उत्पादन लागत में बचत होती है।
7. इसके अतिरिक्त इसमें सूक्ष्म जीवाणु जो नाइट्रोजन को बढ़ाते हैं, हार्मोन एवं एन्जाइम भी पाये जाते हैं जो पौधों के सम्पूर्ण विकास में सहायक होते हैं।

8. इसके प्रयोग से भूमि के ताप संचरण तथा माइक्रोक्लाइमेट की एकरूपता के लिए अनुकूलता पैदा होती है।
9. इसक व्यवहार से कम से कम पानी में अच्छी खेती संभव है।
10. इससे पैदा किया गया उत्पाद स्वादिष्ट होता है।
11. इसके प्रयोग के बाद बीजों का जमाव जल्दी होता है।
12. दो से चार महीने में केंचुए की संख्या दोगुनी हो जाती है। इस तरह कम्पोस्ट के साथ–साथ केंचुओं को बेचकर अतिरिक्त आमदनी प्राप्त की जा सकती है।
13. वर्मीकम्पोस्ट में कूकून की मात्रा काफी रहती है जो मिट्टी में जाने के बाद केंचुओं की संख्या को बढ़ाती है फलस्वरूप मृदा में वर्मीकम्पोस्ट बनने की प्रक्रिया अपने आप होती रहती है।
14. मिट्टी की संरचनात्मक शक्ति काफी अच्छी हो जाती है।
15. वर्मीकम्पोस्ट बनाने में घरेलू कचरा, खेतों के बेकार पदार्थ तथा कारखानों के कचरों का इस्तेमाल होता है इस तरह प्रदूषण को कम करने में यह काफी सहायक होता है।

कृषि में बायोडिग्रेडेबल नैनाक्ले पॉलीमर कम्पोजिट (एनसीपीसी) का प्रयोग

कीर्ति सौरभ[1], के. एम. मन्जाइअह[2], एस. सी. दता[2]
[1]भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
[2]भा कृ अ प – भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली

फसल पैदावार और उत्पादन लाभ को बढ़ाने के दृष्टिकोण से कृषि में युक्तिपूर्ण का उपयोग अति आवश्यक है। वर्त्तमान समय में, किसानों द्वारा अंधाधुन उर्वरकों का प्रयोग उत्पादन सीमा में वृद्धि के लिए किया जा रहा है। पारंपरिक उर्वरकों के प्रयोग में, मिलाई गई नाइट्रोजन से अनुमानित दक्षता लगभग 30–70 प्रतिशत है लेकिन प्रायः यह 50 प्रतिशत से भी कम होती है। नष्ट हुए उर्वरक का ये हिस्सा न सिर्फ वित्तीय हानि अपितु उर्वरको की दक्षता में कमी और पर्यावरणीय प्रदूषण के लिए भी उत्तरदायी है। इन अपर्याप्ताओं की भरपाई ऐसे उर्वरक जो नियंत्रित गति से मृदा में पोषक तत्व निष्कासित करते है से की जा सकती है। ऐसे उर्वरकों को स्लो रिलीज़ फर्टिलाइजर कहते ह। जो उर्वरकों की दक्षता में भी बढ़ोतरी लाते है। स्लो रिलीज फर्टिलाइजर पौधों की आवश्यकता अनुरूप पोषक तत्व स्त्रावित करते है एवं उर्वरकों को नष्ट हाने से भी बचाते है। चूँकि पानी को कृषि के उत्पादन को सीमित करने वाले मुख्य कारकों में से एक माना जाता है, इसलिए जल संसाधन का उपयोग भी बहुत कुशलतापुर्वक किया जाना चाहिए। हाल ही में, कृषि में सुपरवसॉर्बेंट का प्रयोग जल प्रंबधन तकनीक के रूप में वैज्ञानिक का ध्यान आकर्षित कर रहा है। सुपरवसॉर्बेंट पॉलीमर क्रॉस–लिंक्ड जलत्रेहि ऐसा पॉलीमर है जो पानी, खरा पानी तथा अन्य तरल पदार्थो को अपने स्वयं के वजन के सैकड़ों गुना तक अवशोषित कर सकते है। इस प्रकार कृषि में उपयोग के दृष्टिकोण से, सुपरवसॉर्बेंट और स्लो रिलीज़ फर्टिलाइजर के मिश्रण से जल धारण क्षमता में वृद्धि के साथ मिटटी के पोषक तत्त्व प्रतिधारण की क्षमता में वृद्धि की जा सकती है। ऐसे पॉलीमर उर्वरकों की जल/पोषक तत्त्व धारण करने की क्षमता अथवा उत्पादन लागत में कमी लाने के लिए इनमें इनऑर्गेनिक क्ले (केओलिन, बेंटोनाइट, मॉन्टमोरीलोनाइट, एटापुलगाइट, और माइका) को भी सम्मिलित किया जा सकता है। इस प्रकार शद्ध सुपरवसर्बिंट पॉलीमर (बहुलक) एवं नैनोक्ले कण के संयोजन से बनने वाले पदार्थ को नैनाक्ले पॉलीमर कम्पोजिट (एनसीपीसी) कहते है। जो की एक साथ उर्वरको को नियंत्रित रूप से छोड़ने तथा जल संरक्षण करने के लिए एक प्रभावी प्रबंधन विधि हो सकती है। मुख्यतः सुपरवसॉर्बेंट कृत्रिम जलस्त्रेहि पॉलीमर का उपयोग करके उत्पादित किये जाते है, उदाहरणतः पॉली (एक्रिलिक एसिड) या पॉली (एक्रील एमाइड) के साथ इसके को–पॉलीमर। जब इन कृत्रिम पॉलीमर्स का प्रयोग किया जाता है तो पूर्णतः क्षरित न हो पाने के कारण इनका संचय समय के साथ मिट्‌टी में पाया गया है, इसलिए सुरक्षित पर्यावरण के दृष्टिकोण से आजकल पूर्णतः क्षरित होने वाले सुपरवसॉर्बेंट पॉलीमर्स की मांग लगातार बढ़ रही है। स्टार्च, लिग्निन, सेल्यूलोज और चिटिन कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्राकृतिक बायोपॉलिमर है जिनमें कम लागत, पर्यावरण के लिए हानिरहित एवं पूर्णतः क्षरित होने के गुण पाए जाते है। अतः इनका प्रयोग उर्वरक उद्योग में आसानी से किया जा सकता है। इस तरह के उर्वरकों से पोषक तत्वों की निष्कासन की गति इनके क्षरण दर द्वारा

नियंत्रित होती है, जो कि विभिन्न कारकों द्वारा प्रभावित हाती हैः पॉलीमर (बहुलक) का आण्विक भार, मृदा का पीएच, तापमान, मिट्टी में आयन अथवा सूक्ष्मजीवों की उपस्थिति इत्यादि।

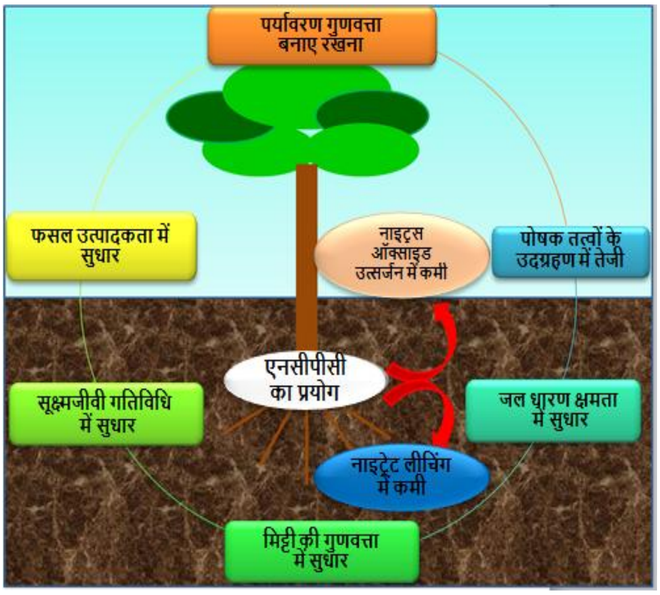

मृदा– पादप–वायुमंडल प्रणाली में बायोडिग्रेडेबलएनसीपीसी उर्वरक का प्रभाव

कई एग्रोनोमिक अध्ययनों से पता चला है कि सुपरवसॉर्बेंट नैनोकम्पोजिट उर्वरक पारंपरिक उर्वरकों से बेहतर हैं। सरकार और दत्ता (2014) ने ऐक्रेलिक एसिड और एक्रिल एमाइड मोनोमर्स का उपयोग करके उर्वरक से तैयार नैनो–सुपरबॉर्बेंट पॉलीमर कंपोजिट (एनसीपीसी) तयार किया। उन्होनें बताया कि NCPC-H (उच्च खुराक) और NCPC-L (कम खुराक) के अलावा पारंपरिक उर्वरक उच्च और निम्न खुराक पर क्रमशः बाजरा का 18% और 26% अतिरिक्त बायोमास उपज हुआ। सौरभ (2016) ने कइ बायोडिग्रेडेबल एनसीपीसी का संश्लेषण किया। इन निर्मित एनसीपीसी को यूरिया के जलीय घोल में अवशोषित कराया गया जिससे की वो यूरिया को धीमी गति से छोड़ने के वाहक के रूप में कार्य कर सकें। निर्मित एनसीपीसी) का यंत्रीकरण स्कैनिंग इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोपी (SEM) ट्रासमिशन इलेक्ट्रान माइक्रोस्कोपी (TEM)फॉरिएर ट्रांसफार्म इंफ्रारेड स्पेक्ट्रोस्कोपी (FTIR), एक्स–रे डिफ्रैक्शन (XRD) तकनीकों का प्रयोग करते हुए लक्षण वर्णन किया गया। ग्रीनहाउस प्रयोग के परिणाम से ये संकेत मिला सभी एनसीपीसी उर्वरकों की नाइट्रोजन उपयोग क्षमता पारंपरिक उर्वरक से अधिक पाई गई। धान एवं गेंहू के दानों में सूक्ष्मपोषक तत्वों की उपलब्धता भी एनसीपीसी उर्वरकों में ज्यादा पाई गई। मिट्टी के संबंध में उत्तम सूक्ष्मजीवी गतिविधि तथा एंजाइम गतिविधियों का संकेत एनसीपीसी उर्वरक में पाया गया। नाइट्रस आक्साइड का उत्सर्जन भी ज्यादा पारंपरिक उर्वरक में पाया गया। बायोडिग्रेडेबल व्यवहार के मूल्यांकन के लिए निर्मित एनसीपीसी का इंक्यूबेसन 90 दिनों के लिए नमीयुक्त मिट्टी में प्रयोगशाला में किया

गया। 90 दिनों में बायोंडिग्रेडेबल एनसीपीसी का क्षरण दर 32.8% तक पाया गया जबकि कृत्रिम एनसीपीसी में 11.2% तक क्षरण दर पाया गया।

SEM

TEM

FTIR

XRD

अतः प्राकृतिक बहुलकों एवं बेंटोनाइट नैनोक्ले द्वारा बने एनसीपीसी उर्वरक, पोषक तत्वों को धीमी गति से छोड़ते है जो प्रकृति में बायोडिग्रेडेबल हैं और जिससे मिट्टी की उर्वरता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं है, बल्कि यह मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है। इस प्रकार, पर्यावरण और तकनीकी दृष्टिकोण से बायोडिग्रेडेबल एनसीपीसी महत्वपूर्ण हैं।

वैज्ञानिक विधि द्वारा डेयरी पशुओं का प्रबंधन

रजनी कुमारी, शंकर दयाल, पो. सी. चन्द्रन, एस. के. बरारी, प्रदीप रे एवं रीना कमल
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

डेयरी फार्मिंग व्यवसाय समाज के उन वर्गों के लिए विशेष रूप से महत्वपूण ह, जो पारंपारिक रूप से कमजोर होते हैंः जैसे– छोटे भूस्वामि, भूमिहीन मजदूर एवं महिलाएं। इतना ही नहीं लाभदायक डेयरी फार्मिंग, ग्रामीण अर्थव्यवस्था के संतुलित विकास की नींव भी है। डेयरो फार्मिंग को लाभकारो बनान के लिए यह बहुत जरूरी है कि दुधारू पशओं का प्रजनन उत्तम हो। एक व्यवसायिक डेयरी में 10 प्रतिशत से अधिक प्रजनन समस्याएं चिंता का विषय है, जिसका शीघ्र ही निदान एवं उपचार अनिवार्य है।पशु म प्रजनन को प्रभावित करने के अनेक कारक हैं, जिनमें प्रबंधन संबंधित, वातावरण संबंधित, पोषण संबंधित एवं रोग संबंधित कारक मुख्य हैं।

- वातावरण संबंधित–पशु की उत्पादकता पर तापमान का बहुत प्रभाव होता है। ताप के तनाव के कारण डेयरी पशुओं की उत्पादन एवं प्रजनन क्षमता दुष्प्रभावित होती है। ताप तनाव के कारण पशु भाजन की मात्रा लेना कम कर देता है। जिससे उसकी उत्पादन क्षमता कम होती है। ताप तनाव से पशु में व्यवहारिक मद (इस्टस) की तीव्रता एवं अवधि कम होते है। गाभिन पशुओं में भूण की विकास दर घट जाती हैं एवं कभी–कभी गर्भपात भी हो जाता है।

- पशु पोषण– पशु पोषण का पशु प्रजनन में बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। उचित पशु पोषण के अभाव में व्यस्क पशुओं का मद में न आना **(एनाईस्ट्रस),** गर्भपात, गर्भधारण न होना, जैसी समस्याएँ होती है।

- रोग संबंधित–परजीवी संक्रमण, सामान्य रोगां, अस्वस्थता की स्थिति के कारण भी पशु की उत्पादन एवं पजनन क्षमता पर दुष्प्रभाव होता है। इनके कारण जरायु–प्रदाह, जर का ना गिरना एवं गर्भाशय संबंधी कई समस्याएँ पैदा होती है।

- प्रबंधन संबंधित जैसे– मद का दोषपूर्ण पता लगाना, बछड़ों के दूध छ़ड़ाने की प्रक्रिया का अमल न करना एवं पोषक तत्वों की अपर्याप्त आपूर्ति–पशुओं की प्रजनन क्षमता को घटाते है।

❖ हालांकि सभी परिस्थितयों को नियंत्रित करना बहुत कठिन है परंतु निम्नलिखित उपायो द्वारा पशुओं की प्रजनन क्षमता में सुधार किया जा सकता हैं –

1.सभी पशुओं खास तौर स गाभिन पशुओं को अनुकूल आवास उपलब्ध कराना चाहिए।

2. गर्मी के महीनों में पेड़ों की छॉव मुहैया करानी चाहिए।

3. गर्मी के समय में कम रेशे वाले खाद्य पदार्थ जैसे यूरिया– गुड़ का मिश्रण, मक्का का साइलेज, खिलाना चाहिए। भैंसों को गर्मी के मौसम में तलाब में छोड़ना चाहिए।

4. पशुओं के आाहर में नियमित रूप से खनिज मिश्रण, को सम्मिलित करना चाहिए। खनिज मिश्रण के द्वारा कई बॉझपन की समस्याओं को दूर किया जा सकता है। कैल्शियम एवं फॉस्फोरस खनिज को पर्याप्त आपूर्ति करानी चाहिए। इससे '' जर न गिरना, मद में न आना (Anestrus) जैसी समस्यााओं का निदान किया जा सकता है।

5.प्रबंधन कार्यों में सुधार जैसे–पशु मद म है या नही इसकी सही जॉच होनी चाहिए एवं उसी आधार पर कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए। साफ सफाई के तौर तरीके अपनाकर गंदगी से उत्पन्न होने वाली कई बीमारियों पर काबू पाया जा सकता है।

6.फिरना (Repeat Breeding) का प्रबंधनः पशु के गर्भधारण करने के लिए यह बहुत जरूरी है कि वह गर्मी में आया हो, एवं पशु के गर्मी में आने के समय के आधार पर कृत्रिम गर्भाधान करने के समय को निर्धारित किया जाता है। केवल प्रशिक्षित व्यक्ति द्वारा ही पशुओं में कृत्रिम गर्भाधान करवाना चाहिए। अच्छी गुणवत्ता वाले वीर्य का उपयोग करना चाहिए।

❖ गर्मी में किए जाने वाले विशेष प्रबंधन

भैंसों में ताप सहनशीलता कम होती है। भैंसों की चमड़ी काली होने एवं गायों के मुकाबले 1/6 पसीने की ग्रथियां होने के कारण गर्मी सहन करने की क्षमता कम होती है। इसी कारण गर्मियों में भैसों के लिए विशेष इंतजाम करने चाहिए।

1. ठंडी एवं हवादार जगहों में भेंसों को रखना चाहियें। एवं समय–समय पर पानी का छिड़काव करना चाहियें।
2. भैंसों को नहलाना चाहियें एवं दोपहर के समय, 3–4 बार इनके शरीर पर पानी का छिड़काव करना चाहिए।
3. दिन में 3–4 बार शीतल एवं साफ जल पिलाना चाहिये।
4. भैसों को हरा एवं मुलायम चारा खिलाना चाहिये इससे ताप का दबाव कम किया जा सकता है।
5. पशुओं को रात के समय भी खिलाया जा सकता हैं,क्योंकि इस समय ताप कम होता है।

6. हरा चारा चरने के लिए केवल सुबह अथवा सायंकाल के समय ही पशु को छोड़ना चाहिये।
7. खनिज मिश्रण एवं साधारण नमक नियमित रूप से उनके भोजन में सम्मिलित करना चाहियें।
8. परजीवी संक्रमण से बचाव हेतु, नियमित रूप से कीटाणुनाशकों का छिड़काव एवं कृमिहरण करना चाहिए।

❖ **सर्दी में किए जाने वाले विशेष प्रबंधन**

1. अत्यधिक वर्षा एवं ठंड से पशुओं को बचाए।
2. एक साल तक की उम्र के बछड़ों एवं बीमार पशुओं को अनुकुल एवं आरामदायक बिछौना प्रावधान कराना चाहिये।
3. आवास स्थल में ठंडी हवाओं के प्रवेश का बचाने के लिए जूट के बोरो का इस्तेमाल करना चाहिये।
4. प्रजनन पशुओं के खाद्य में अधिक ऊर्जा वाले खाद्य पदार्थों को सम्मिलित करना चाहियें।
5. रात्रि समय सूखा चारा जैसे– गेहूँ का भूसा, फूस–पशु के इच्छानुसार मात्रा में दिया जाना चाहिए।

❖ इनके अलावा यदि निम्नलिखित बिदुओं पर अमल किया जाए तो पशुओं द्वारा गर्भधारण करने की संभावनाएं और अधिक बढ़ती हैः–

1. सही रिकॉर्ड रखना
2. गर्मी में आए पशुओं की सही जाँच करनी चाहिए।
3. पशुओं में गर्मी आने पर दो बार प्रजनन कराना चाहिए।
4. सुबह–शाम (AM-PM)का नियमः– जो पशु सवेरे 6 बजे गर्मी में आते हैः उनमें 6 बजे शाम में कृत्रिम गर्भाधान किया जाना चाहिए। एवं जो पशु शाम 6 बजे गर्मी में आते है उनमें सवेर 6 बजे कृत्रिम गर्भाधान कराना चाहिए।
5. कृत्रिम गर्भाधान के लिए केवल प्रजनन क्षमता वाले नर पशुओं के वीर्य का ही उपयोग करना चाहिए
6. पशुओं को कृत्रिम गर्भाधारण के समय 100 पिकोग्राम गोनाडोट्रोफिन रिलिज़िंग हॉर्मोन का इन्जेक्शन देना चाहिए।
7. पशुओं के आसपास का वातावरण आरामदायक होना चाहिए अधिक गर्म एवं अधिक ठंड में अनुकूल प्रावधान उपलब्ध कराने चाहिए।

❖ **कृषकों के लिए युक्तियाँः–**

1. यदि सही मात्रा में पर्याप्त भोजन कराया जाए तो पशु में व्यस्कता की उम्र घट जाती है।
2. पशु में प्रसव के बाद 60 दिनों का अवकाश देना चाहिए। पशु के प्रसव के समय, और प्रसव के पश्चात् उचित प्रबंधन करना चाहिए। पशुओं को पर्याप्त हरा चारा खिलाना चाहिए एवं ताप के दबाव से बचाना चाहिए।

❖ एक पशु से सामान्यतः एक बच्चा प्रति वर्ष होना चाहिए। परन्तु सही प्रबंधन एवं देखरेख ना होन के कारण किसान भाईयों के लिए यह एक सपना ही रह जाता है। पशुओं में पाई जाने वाली मुख्य प्रजनन समस्याएँ एवं इनका निदान इस प्रकार हः–

1. **गर्मी में ना आना (एनाईस्ट्रस)**– एक नियमित अंतराल पर ऋतुकाल के संकेत का अभाव एनाईस्ट्रस कहलाता है। यह समस्या निम्न कारणों से हो सकती है–
   - ✓जन्म के समय जननांगा में विकृति या आनुवांशिक बाँझपन जैसे डिम्ब ग्रंथि में विकासरोध, बच्चेदानी की ग्रंथियों को अविकसित होना इत्यादि। यह विकार पशु चिकित्सक द्वारा पश की जाँच कराने पर पता चल सकता है तथा इस स्थिति में कोई भी रोगोपचार प्रबंधन उपयोगी नहीं है।
   - ✓संतुलित आहार कमी से भो पशु गर्मी में नहीं आते है। विटामिन एवं खनिज विभिन्न प्रजनन कार्यां में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। इनकी कमी से विभिन्न प्रजनन समस्याएं हो सकती ह। इसलिए पशु को संतुलित आहार के साथ–साथ खनिज मिश्रण अवश्य देना चाहिए। पशुओ को नियमित समय पर कीड़े मारने की दवाईयाँ अवश्य दें।
   - ✓' कई बार पशुओं में ऋतुकाल की अवधि छोटी होने पर या ऋतुकाल के संकेत ठीक ढ़ंग से ना दिखाने पर गमी का पता नहीं चल पाता ह और इसे साइलेन्ट हीट या 'अप्रत्यक्ष ईस्ट्रस' या मूक गर्मी कहते है। यह समस्या गर्मियों म भैंसों में अधिक पाई जातो है। इस समस्या से निजात पाने के लिए नर पशु को मादा के साथ रखना चाहिए या फिर ''टीजर बुल '' (नसबन्दो वाले सॉड) का प्रयोग करना चाहिए।
   - ✓गर्भाशय में संक्रमण के कारण कार्पस ल्युटियम का अण्डदानी में बना रहना, इस रोग की पहचान है। इसका पता पशु चिकित्सक द्वारा 10–12 दिन के अन्तराल पर दो बार पशु के जननागो को जॉच से हो सकती है तथा रोगोपचार के लिए पी. जी. एफ. 2 एलफा हामोन (वेटमेट/प्रगमा आदि) का टीका उस मॉस में लगवाना चाहिए।
2. **पशुओं का बार–बार फिरना (रिपीट ब्रीडिंग)**– रिपीट ब्रीडिंग में गाय बिल्कुल सामान्य होतो है परन्तु तीन या अधिक बार गर्भाधान सेवाओं के बाद भी गर्भधारण में

असफल होती है। ऐसे पशु समयानुसार गमी में आत हैं तथा इनका जननांग सामान्य हाता है। रिपीट ब्रीडिंग निम्न कारणों से हो सकती है।

- ✓अंडाणु का उत्सर्जन न होना या देरो से उत्सर्जित होना।
- ✓अंडाणु का वृद्ध होना।
- ✓मादा पशु में प्रजनन सम्बंधी हार्मोन की कमी।
- ✓बच्चेदानी में संक्रमण या सूजन।
- ✓संतुलित आहार की कमी।
- ✓वीर्य या नर पशु में खराबी।
- ✓कृत्रिम गर्भाधान के समय वीर्य को सही समय व समुचित स्थान (मादा जननांग) पर न छोड़ा जाना।

इस रोग के प्रबंधन के लिए निम्न बातों का ध्यान रखें

- ✓ जब भी मादा पशु गर्मी में आए उसके 10 घंटे बाद ही गर्भधारण करवाए या नर पशु से प्रजनन करवाए।
- ✓ पशु को संतुलित आहार एवं खनिज मिश्रण नियमित रूप से प्रदान करें।
- ✓ उत्तम गुण का वीर्य ही गर्भाधान के लिए प्रयोग करं।
- ✓ यदि बच्चेदानी में संक्रमण या सूजन हो ता पशु को एंटिबायेटिक का टीका लगवाएं।

3. **सिस्टिक ओवेरियन डिजनेरेशन (अण्डदानी में गांठ)**— यह बीमारी संकर नस्ल के दुधारू पशुओं में अधिक देखी जाती है।
   - ✓ पायः तीसरे से पाँचवे ब्यांत में ज्यादा होती है।
   - ✓ फफूँद वालो चारा खिलाने से।
   - ✓ यह बीमारो आनुवांशिक भी होती है।
   - ✓ इस बीमारो में पशु बार—बार लम्बे समय तक गर्मी में आता है या कई बार लम्बे समय तक गर्मी में नहीं आता है
   - ✓ इस बीमारो के निदान तथा रोगोपचार के लिए पशु चिकित्सक से सलाह लें।
   - ✓ समय रहते अगर उपचार नहीं करवाया तो यह स्थाई बाँझपन का कारण हो सकता है।
4. **भ्रूण की मृत्यु**— गर्भकाल की किसी भी अवस्था में भ्रूण की मृत्यु हो सकती है। गर्भकाल के छठे से 18 वें दिन तक 45 प्रतिशत भ्रूणीय क्षय होने की प्रबल संभावना होती है। इसका कारण कमजोर कार्पस ल्यूटियम का बनना है, जिसके फलस्वरूप प्रोजस्ट्रोन का स्तर न्यूनतम होना है। पशु नियमित अन्तराल पर

कामोतेजना का लक्षण प्रदर्शित करता ह या फिर 30 दिन या उससे अधिक अन्तराल पर कामात्तजना की प्रवृति दोहराता है।

5.गर्भाशय में संक्रमण– कामोत्तेजना और प्रसव के समय संक्रमण गर्भाशय में प्रवेश करता है। रक्त के माध्यम से संक्रमण का गर्भाशय में प्रवेश करने की संभावना कम ही होती है। प्रसव के बाद गर्भाशय में संक्रमण हो तो पशु उदासी के लक्षण, भूख की कमी, बुखार, कमजोरी इत्यादि लक्षण दिखाता है, योनी मार्ग से पीला बदबूदार मवाद स्त्रावित होता है। प्रसव के प्रथम चार हफ्ते के दौरान संक्रमण गर्भाशय के ऊपरी स्तर पर रहता है और इसे– ''एंडोमेट्राइटिस''– कहते है। इस बीमारो में कामोत्तेजना सामान्य होती है परन्तु पशु रिपीट ब्रीडर बन जाता है। इस बीमारो का समाधान एंटीबायाटिक टीकों से किया जा सकता ह।

❖ अतः डेयरीफार्मिंग को लाभदायक बनाने हेतु निम्नलिखित तालिका के अनुसार लक्ष्य निर्धारण करना चाहिएः–

प्रजनन विशेषता	गाय	भैंस
यौवन की उम्र (माह)	18 माह	21 माह
प्रथम गर्भधारण की उम्र	21 माह	32 माह
प्रसव से कृत्रिम गर्भाधान का औसत अंतराल	65 दिन	75 दिन
प्रसव से गर्भधारण का औसत अंतराल	85 दिन	90 दिन
प्रथम गर्भाधान से गर्भधारण दर होने की दर	80%	70%
प्रजनन क्षमता	46%	40%
सम्पूर्ण गर्भावस्था दर	60%	50%
पशुओं की वार्षिक प्रजनन दर	10%	10%

उपरोक्त सूत्रों को अमल में लाया जाए तो डेयरीफार्मिंग को एक सफल कारोबार के रूप में विकसित किया जा सकता हैं। इतना ही नहीं किसानों की आय दुगुनी करने में यह एक कारगर जरिया भी सिद्ध हो सकता हैं

मेरी माँ

शरद कुमार द्विवेदी
वैज्ञानिक, फसल अनुसंधान प्रभाग
भारतीय कृषि अनुसंधान का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

तपती गर्मी में ठंडी छाँव सी है, मेरी माँ
कठीले पथ में एक सुखद ठहराव सी है, मेरी माँ
स्नेह, ममता और करूणा की शीतल अलाव सी है, मेरी माँ
मेरे घबराए हुए मन में, एक साहसी भाव सी है, मेरी माँ
मेरे जीवन की जननी, मेरी सद्भाव है, मेरी माँ
मेरे आचरण और संस्कारों की प्रार्दुर्भाव है, मेरी माँ ।।
माँ के आँचल में ममता और माँ के चरणों में स्वर्ग है
माँ का सम्मान और माँ की सेवा, तो हर बेटे का धर्म है
इस धरती की भगवान है माँ, हर बेटे का अभिमान है माँ।।
मुझसे ना हो कोई भूल, बस इतनी दुआ माँ तेरे चरणों हो कबूल,
सदा करूँ मैं बड़ों का सम्मान, जिससे बना रहे माँ तेरा स्वाभिमान।
अपनी माँ के चरणों में शीश नवाता हूँ।
मेरी माँ जैसी हो सबको माँ, बस यही बात दोहराता हूँ।।
मेरी माँ, प्यारी माँ ।।

बेटियाँ

दुष्यन्त कुमार राघव
कृषि विज्ञान केन्द्र, रामगढ़
भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनु. परिसर, पटना

भेजे जाते हैं आम जो मायके से, उसकी भी आँगन में लगा देती है गुठलियाँ।

आती है याद जब माँ की तो उसको देखती हैं बेटियाँ।।

निकलती है जब कोपले तो याद करती हैं बचपन।

पत्ती सी खिलखिलाती हैं बेटियाँ।।

आती हैं जब सोधी खुशबु मिट्‌टी की, सावन में मिट्‌टी को उकेरती हैं बेटियाँ।

कोयल जब कुहकती है डाल पर तो, आम को ही जोहती हैं बेटियाँ।।

भाई की राखी को मंजर में देखती हैं बेटियाँ।

आंसुओं के शैलाब को पीकर, घर को सहेजती है बेटियाँ।।

आता है मुश्किलों का दौर तुफान सा, जड़ गहरी आम सी करके खड़ी रहती हैं बेटियाँ।

याद आती है मायके की हर पल, तो उस पल आम को देखती हैं बेटियाँ।

वन के तोरज द्वार पुजा में संस्कार सहेजती हैं बेटियाँ।

खट्‌टे मीठे आम के टिकोले से घर को सहेजती हैं बेटियाँ।

मायके की याद में हर दिन नया युग सहेजती हैं बेटियाँ।

तारा थी मायके का कभी, अब बनके चांदनी रोशनी बिखेरती हैं बेटियाँ।

मायके के आम की गुठलियां इसलिये सहेजती हैं बेटियाँ।

जूते का वियोग

कमल कुमार लाल
कनिष्ठ लेखाधिकारी
भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

लोग कहते हैं कि जूता व्यक्तित्व को निखारता है,

तभी तो इन्सान चेहरे के साथ–साथ अपने जूते भी अच्छी तरह निहारता है।

यह सोच मैंने अपने जूते को खूब चमकाया,

जूता चमकाने के चक्कर में अपने आप को ही मोची बनाया।

पर हाय मैं अभागा, कि मेरा जूता ही कोई ले भागा

जूते तो जूते कमबख्त मोजे भी ले भागा।

पल भर में चोर ने मेरी नैया डूबा दी

ऐसा लगा जैसे एक साथ 10–20 सूइयाँ चुभो दी।

अब मेरी हालत बड़ी दयनीय थी,

जूता वियोग की यह पीड़ा असहनीय थी।

मेरा तो अंदर ही अंदर खून खौल रहा था

और मैं मन ही मन चोर को बोल रहा था–

हे चोर! जा मेरे जूते से तेरा भरण–पोषण हो जाये,

तू इतना खाये कि तुझे लूज मोशन हो जाये।

यूँ तो चोर जूता चुराने का आदी था,

पर साथ–ही–साथ वह बड़ा स्पष्टवादी था।

जाते–जाते उसने लिख दिया कि आपके जूते बेचने पर अच्छा दाम आयेगा,

और आपका मोजा किसी को बेहोश करने के काम आयेगा।

दुखी मन में भी चोर का ये अंदाज मुझे बहुत भाया,
सोचा मैं न सही कम–से–कम मेरा जूता–मोजा तो किसी काम आया।
परंतु विरहा की यह आग कहाँ बुझने वाली थी,
अभी तो घर पर ही मेरी वाट लगने वाली थी।
घर पर जब मैं बैठा था मुँह लटकाये,
तभी कुछ सज्जन मेरा हाल पूछने आये।
अतिथि देवो भवः की भावना से मैंने उनका स्वागत–सत्कार किया,
आदर सहित बिठाकर चाय और समोसे का अल्पाहार दिया।
परंतु आहार देखते ही उनके सब्र के फव्वारे फूट पड़े,
और देखते ही देखते वे भूखे भेड़िये की तरह समोसों पर टूट पड़े।
मैं डर गया कि समोसों के साथ–साथ कही वो मेरा प्लेट भी न खा जायें
और फिर भी भूख न मिटी तो कहों ये लोग मुझे भी न चबा जायें।
ऐसा लगा जैसे उनके अंदर का इंसान सो गया,
और उन समोसों के बीच मेरा जूता कहीं खो गया।
यह सब देख मेरा दर्द फिर से जीवित हो गया,
पहले तो केवल जूते का वियोग था
पर अब तो मैं समोसा वियोग से भी पीड़ित हो गया।
खैर समोसे की कथा तो मैं किसी से ना कहूँगा,
मगर कोई ये तो बताये कि अपने जूते का वियोग मैं कैसे सहूँगा?

रेडियो

दुष्यन्त कुमार राघव
कृषि विज्ञान केन्द्र, रामगढ़
भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनु. परिसर, पटना

सुबह नींद से जगाता है जो, भजन गुरूवाणी सुनाता है जो।

जगे हाल दुनिया के बताता है जो, वो है रेडियो।।

बाल गोपाल, महिलाओं को गुनगुनाता है जो, गुरू के ज्ञान के बोल भी सुनाता है जो।

संध्या भजन भो सुनाता है जो, वो है रेडियो।।

देश दुनिया को बंद ऑखों से दिखाता है जो, चंचल मन को लुभाता है जो।

चिर यौवन को भी गुनगुनाता है जो, वो है रेडियो।।

जन, धन, किसान वाणी को सुनाता है जो, आँखों में सपनों को लाता है जो।

भुली बिसरी यादों को लाता है जो, आकाशवाणी अभी होती है बताता है जो, वो है रेडियो ।।

स्वर्ण श्रेया : सूखारोधी धान की उन्नत प्रजाति

संतोष कुमार, जे.एस.मिश्र, शरद कुमार द्विवेदी, अभिषेक कुमार दूबे एवं मनीषा टम्टा

भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनुसंधान परिषद्, पटना

धान देश की प्रमुख खरीफ फसल है। परम्परागत तरीके से धान की खेती करने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता पड़ती है। सिंचित धान में एक किलो चावल उत्पादन करने के लिए 3000 से 5000 लीटर पानी की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु, किसान सिंचाई सुविधा की कमी एवं अनियमित मानसून के कारण इतना पानी नहीं दे सकते। असिंचित क्षेत्रों में वर्षा जल की पर्याप्त मात्रा न होने के कारण किसान समय से धान की रोपाई नही कर पाते हैं और इससे धान की उत्पादकता में कमी आती है। नहरों में समुचित पानी न होने एवं समय पर पानी उपलब्ध न होने के कारण सिंचित क्षेत्रों में भी सूखाड़ की स्थिति पैदा हो जाती है। इन सारी परेशानियो से निपटने के लिए एरोबिक धान की खेती करने की जरूरत है। एरोबिक धान की खेती में धान की सीधी बुआई करते हैं इस तरह इसमें न तो कादो करते हैं और न हो लगातार जल भराव की जरूरत होती है। बढ़ते हुए पानी की कमी की समस्या से निपटने के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना एवं अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान, मनीला, फिलीपिंस के साथ मिलकर सूखा सहिष्णु एरोबिक धान स्वर्ण श्रेया को विकसित किया है। धान की इस प्रजाति में सुखा सहने के साथ–साथ अत्यधिक उपज देने की भी क्षमता है। मध्यप्रदेश, छत्तीशगढ एवं बिहार के पानी की कमी वाले क्षेत्रों में एरोबिक परिस्थिति में खेती के लिए इसका विमोचन किया गया है। धान की यह किस्म 115–120 दिनों में पक कर तैयार हो जाती है। इस प्रजाति की खेती मध्यम ऊपरी भूमियों एवं वर्षाश्रित सूखा प्रवन उथली नीची जमीन में सीधी बुवाई द्वारा बिना कादो एवं बिना जल–जमाव वाले वायवीय मिट्टी में करते हैं। इसकी खेती सिंचित अथवा वर्षा

आधारित स्थिति में कर सकते हैं परन्तु दोनों स्थिति में मिट्टो में नमी हमेशा बनी रहे। प्रत्यारोपित धान की खेती के तुलना में इस विधि से खती में श्रम, बीज, पोषक तत्वों और अन्य लागत के साथ 40–50 प्रतिशत पानी की बचत होती है। स्वर्ण श्रेया की खेती से सुखा वर्षा के दौरान अंतर्विराम सुखा से होने वाले नुकसान में कमी की जा सकती है। रोपाई वाली धान की तुलना में एरोबिक धान के खेत में खड़े पानी की अनुपस्थिति के कारण वातावरण में मिथेन उत्सर्जन में 80–85 प्रतिशत तक की कमी आती है जिसमें पर्यावरण की सुरक्षा भी होती है।

स्वर्ण श्रेया की विशेषतायें

विशेषतायें		**विशेषतायें**	
पौध की ऊंचाई	100–105 सेंटीमीटर	दानें की लंबाई	5.85 मिलीमीटर
पोधे का प्रकार	अर्द्धबौना	दाने की चौड़ाई	2.39 मिलीमीटर
दौजियों की संख्या प्रतिपौधा	8–10	दानों का लंबाई/चौड़ाई का अनुपात	2.45
बालियों की संख्या प्रति/वर्गमीटर	270–280	दाने का प्रकार	लम्बा पुश्ट
फूल आने की अवधि	85–90 दिन	कुटाई में प्राप्त चावल की मात्रा	77.5 प्रतिशत
बाली का प्रकार	ठोस	साबुत चावल	56.2 प्रतिशत
बाली का बाहर होना	अच्छा	क्षारीय प्रसार मूल्य	4.0
1000 दानों का वनज	24 ग्राम	एमिलोज की मात्रा	21.87 प्रतिशत
दानों का रूप	सफेद	सुगंध	नहीं

स्वर्ण श्रेया की उत्पादन तकनीकः

बीज दर : बोज की सीधी बुवाई के लिए 25–30 किलोग्राम/हेक्टेयर बीज की आवश्यकता होती है।

बुवाई का समयः 10 जून से 25 जून

बीजोपचार : थीरम/बेविस्टीन से 2.0 ग्राम प्रति किलो की दर से कर लेना चाहिए।

भूमि एवं बुवाई की तैयारीः सबसे पहले खेत को यथासंभव समतल बना लेना चाहिए। यदि संभव हो तो लेजर लेवलर मशीन से भूमि समतल करें। धान की बुवाई 2–3 से.मी. गहराई पर करें। बुवाई के समय भूमि की उपरी परत में नमी में कमी होने पर अंकुरण कम हो सकता है अतः बीज को 8–10 घंटा पानी में भिंगोंकर फिर छाया में 10–12 घंटा सुखा लेना चाहिए। इस समयशुष्क बुवाई के मामले में इन बीजों को 20 सेमी. की दूरी पर कतारों में सीड ड्रील के द्वारा या फिर हल के पीछे से बुवाई किजिए।

उर्वरक प्रबंधनः धान की इस प्रजाति में प्रति हेक्टेयर 120 किलोग्राम नत्रजन, 60 किलो फास्फोरस और 40 किलो पोटाश को जरूरत होती है। इसमें पूरा फास्फोरस एवं पोटाश तथा 50 प्रतिशत नत्रजन का प्रयोग भूमि की अंतिम तैयारी के समय करना चाहिए। शेष नत्रजन दो भागो में बांटकर कल्ला आने पर (25–30 दिनों) तथा बाली निकलने के समय देनो चाहिए। भूमी में जिंक की कमी पाए जाने पर 25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर जिंक सल्फेट का उपयोग बुवाई के समय करना चाहिए।

जल प्रबंधनः स्वर्ण श्रेया की खेती बिना कादो एवं बिना जल–जमाव किये सीधी बुवाई करके की जाती है। इन खेतों की मिट्टी में नमी बनी रहनी चाहिए। अतः इन खेतो में महीन दरार आने पर सिंचाई करनी चाहिए। बुवाई के समय, कल्ला आते समय, गाभा फूटते समय, फूल लगते समय और दाना बनते समय खेत में पर्याप्त नमी बनाए रखना चाहिए। रोपाई वाली धान की तुलना में, एरोबिक धान स्वर्ण श्रेया की खेती में 40–50 प्रतिशत कम पानी लगता है। इन खेतों में जलभराव की जरूरत नही होती है। केवल मिट्टी में नमी बनी रहनी चाहिए।

खरपतवार प्रबंधनः यदि खरपतवार खेत में पहले से मौजूद है तो हैरो चलाकर या ग्लाइफोसेट (1 किलो/हे.) /पैराक्वेट (0.5 किलो/हे.) का छिड़काव करें। धान की सीधी बुवाई की अवस्था में खरपतवार का काफी प्रकोप होता है। इनमें मोथा, दूब, जंगली धान,

सावॉ सामी, मकरा इत्यादि का प्रकोप पाया जाता है। इन सबके प्रकोप से बचाव हेतू बुआई के दो दिनों के अंदर (पौधों के अंकुरण से पहले) पेन्डिमैथेलिन 30 ई.सी. (1.0 किलो/सक्रिय तत्व/हे.) /(3.33 किलो स्टामप /हे.) का छिड़काव कर देना चाहिए। बिजाई के 15–20 दिनों के बाद यदि खरपतवार है तो बिसपायरीबैक सोडियम 10 प्रतिशत एस.पी का छिड़काव (20–25 ग्राम /सक्रिय तत्व/हे.) / (200–250 मि.ली नोमनीगोल्ड /हे.) करें। पेन्डीमिथिलिन और नोमनीगोल्ड के छिड़काव के समय खेत में अच्छी नमी की मात्रा का होना आवश्यक है।

रोग नियंत्रणः

धान की नई प्रजाति स्वर्ण श्रेया झोंका/प्रध्वंस (ब्लास्ट), भूरा धब्बा रोग (ब्राउन स्पॉट), आच्छद/आवरण गलन (शीथ रॉट) एवं आर.टी.डी. रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधक क्षमता है। सुखाड़ की स्थिति में धान में मुख्यरूप से भरी चित्ती और झोंका रोगों की प्रचुरता देखी जाती है। झोंका एवं भूरा धब्बा रोग के रोकथाम के लिए बीज को बेविस्टीन/ कारबेन्डाजिम 2 ग्राम प्रतिकिलो बीज की दर से बीजोपचार करें। नत्रजन की अनुशंसित मात्रा का प्रयोग करे। अगर खड़ी फसल में भूरा धब्बा रोग के लक्षण दिखाई दे तो मैकोजेब की 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें। झोंका रोग लक्षण दिखाई दे तो हिनोसान 2 ग्रा. प्रति लीटर पानी में धोल कर छिड़काव करें। मिथ्या कलिका रोग के लिए फसल को फूल निकलने से पहले प्रोपीकोनाजोल 25 ई॰सी॰ 1 मिली॰/ली॰ पानी में घोल कर छिड़काव करें अथवा बाली निकलने के समय मैन्कोजेब 75 घुलनशील चूर्ण 2 ग्रा॰/ली॰ पानी में मिलाकर पड़ी फसल पर छिड़काव करें। आवरण झुलसा रोग की स्थिति में कार्बेन्डाजिम 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण दवा का 1.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर फसल पर छिड़काव करें।

कीट नियंत्रण

स्वर्ण श्रेया में तना छेदक (स्टेम बोरर), पत्ती मोड़क (लीफ फोल्डर) एवं नरई कीट/गाल मिज (बायोटाइप1) के प्रति भी मध्यम प्रतिरोधक क्षमता है। पानी की कमी एवं सुखाड़ की स्थिति म धान की फसल में दीमक (टरमाइट), तना छेदक (स्टेम बोरर) एवं दहिया (मिलीवग)

सबसे ज्यादा प्रभावित करते है। दीमक समस्या को बोने से पहले भूमि तैयारी के समय क्यूनालफॉस या क्लोरोपाइरीफास 1.5 प्रतिशत घोल को 20–25 किग्रा./हे. की दर खेत में मिलाने से दूर की जा सकती है और दीमक का प्रकोप खड़ी फसल में है तो भूमि को क्लोरोफाइरीफास 20 ई.सी. 4–5 मिली./ लीटर की दर से पानी में डालकर पौधों को भिंगो देने से प्रकोप रूक जायेगा। तना छेदक के रोकथाम के लिए फ्यूराडॉन (3 प्रतिशत) 10 किलोग्राम या कार्बोरील (4 प्रतिशत) 20 कि.ग्रा. या लीन्डेन (2 प्रतिशत) 20 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से 20 दिन के अन्तराल पर प्रयोग करें। इस दानेदार कीटनाशी के प्रयोग के समय खेत में पानी रहना आवश्यक है। दहिया की समस्या के रोकथाम के लिए कार्बोफ्यूरान (फ्यूराडान 3 जी) 25 कि.ग्रा. प्रति हे. या क्लोरोपाइरीफास (डरमेट 10 जी) या फोरेट (थिमेट 10 जी) 10 कि.ग्रा. प्रति हे. छिड़काव स्थानीय रूप से करें पूरे खेत में नहीं। गंधीबग (राइस सीड बग) के लिए मिथाइल पाराथिमान 2 प्रतिशत धूल दवा का 25–30 किग्रा० कार्बारिल 10 प्रतिशत धूल या क्यूनालफॉस धूल 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर की दर से सुबह में भुरकाव करें।

उत्पादन क्षमताः एरोबिक परिस्थिति में स्वर्ण श्रेया की उत्पादन 45–50 क्विंटल/हेक्टेयर प्राप्त होता है। सुखाड़ की स्थिति (30–45 वर्षा रहित दिन) में 25–30 किवंटल/हेक्टेयर उपज प्राप्त किया जा सकता है।

कटाई सुखाई एवं कुटाईः जब बालियों में 75–80 प्रतिशत तक दाने पक जाए तो फसल की कटाई करनी चाहिए। कटाई के तुरंत बाद पिटाई कर धान के दानों को अलग करें तथा बीज के रूप में प्रयोग करने के लिए 12 प्रतिशत तथा कुटाई के लिए 14 प्रतिशत नमी स्तर तक सुखाए।

हिंदी चेतना मास–2019 : रिपोर्ट

शिवानी एवं उमेश कुमार मिश्र
भा.कृ.अनु.प. का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

शुभारंभ

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना में 02 सितंबर, 2019 को हिंदी चेतना मास– 2019 का शुभारंभ हुआ, जिसका उद्घाटन संस्थान के प्रभारी निदेशक डॉ. जानकी शरण मिश्र द्वारा संपन्न हुआ। डॉ. शिवानी, अध्यक्ष, हिंदी समिति ने स्वागत भाषण देते हुए इस अवसर पर सभी को शुभकामनाएं दी और साथ ही चेतना मास –2019 में होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों के बारे में भी जानकारी दी।

इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए प्रभारी निदेशक डॉ. जानकी शरण मिश्र ने उपस्थित कर्मियों को यह संदेश दिया कि वे ज्यादा से ज्यादा कार्य हिंदी में करें एवं किसी भी हिंदी प्रपत्र को अनिवार्य रूप से हिंदी में ही भरें। डॉ. उज्ज्वल कुमार, प्रभागाध्यक्ष, सामाजिक–आर्थिक एवं प्रसार ने सभी वैज्ञानिकों से अनुरोध किया कि वे प्रसार पुस्तिका हिंदी में ही निकालें ताकि अधिक संख्या में किसान इसका लाभ उठा सकें। संस्थान के मुख्य प्रशासनिक अधिकारी श्री पुष्पनायक ने सभी कर्मियों को हिंदी में कार्य करने के लिए उत्साहित किया, साथ ही उन्होंने सभी लोगों से अनुरोध किया कि वे हिंदी में किये जा रहे कार्यों का अंतरावलोकन करें।

डॉ. शिवानी, अध्यक्ष, हिंदी समिति ने बताया कि हमारा संस्थान 'क' क्षेत्र में आता है अतः हमारी नैतिक एवं संवैधानिक जिम्मेदारी बनती है कि हम अपने कार्यालय का सम्पूर्ण कार्य हिंदी में करें। उन्होंने उपस्थित सभी कर्मियों से अनुरोध किया कि वे ज्यादा से ज्यादा कार्यालयो काम हिंदी में करें एवं सरल हिंदी के प्रयोग पर विशेष बल दें। इस कार्यक्रम के दौरान डॉ. आशुतोष उपाध्याय, प्रधान वैज्ञानिक ने अपनी कविताएं सुनाकर लोगों को मंत्रमुग्ध कर दिया। इसके उपरान्त डॉ. तन्मय कुमार कोले, वैज्ञानिक ने सरस्वती वंदना, और डॉ. अनिर्बाण मुखर्जा, वैज्ञानिक ने देशभक्ति गीत से लोगों का दिल जीत लिया। सुश्री मनीषा टम्टा ने कार्यक्रम में उपास्थित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

कार्यकलाप

पूरे एक महीने चलने वाले इस कार्यक्रम में हिंदी से संबंधित कई प्रतियोगिताएं करवाई गईं, जैसे हिंदी निबंध प्रतियोगिता, प्रश्न मंच प्रतियोगिता, आशुभाषण प्रतियोगिता, काव्य पाठ प्रतियोगिता, यूनिकोड टंकण प्रतियोगिता, पोस्टर प्रतियोगिता, हिंदी व्याकरण प्रतियोगिता, हिंदी

वाद–विवाद प्रतियोगिता, शब्दार्थ प्रतियोगिता एवं अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता। दिनांक 16–17 सितंबर, 2019 को दो दिवसीय हिंदी कार्यशाला का भी आयोजन किया गया, जिसमें प्रथम दिन श्री पुष्पनायक, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी, श्री अजय कुमार सोनी, वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारी एवं श्रीमती प्रभा कुमारी, सहायक प्रशासनिक अधिकारी ने कार्यशाला का संचालन किया तथा दूसरे दिन श्री जे.के. तिवारी, वरिष्ठ अनुवादक, कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, क्षेत्रीय कार्यालय, पटना ने राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन पर व्याख्यान दिये । आयोजित की गई प्रतियोगिताओं एवं दो दिवसीय हिंदी कार्यशाला में संस्थान के अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने बढ़–चढ़कर हिस्सा लिया । सभी प्रतियोगिताएं हिंदी समिति के सदस्यों की देखरेख में सफलतापूर्वक संपन्न हुई। प्रत्येक प्रतियोगिता में संस्थान के वरिष्ठ अधिकारियों ने निर्णायक की भूमिका पूर्ण जिम्मेदारी के साथ निभाई ।

समापन

समापन समारोह की अध्यक्षता संस्थान के प्रभारी निदेशक डॉ. जानकी शरण मिश्र जी ने की। उन्होने कृषि उपयोगी साहित्य लेखन को किसानों तक पहुंचाने पर जोर दिया तथा किसानों की समस्याओं के निवारण हेतु हिन्दी में पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से तथा किसान प्रशिक्षण में हिन्दी भाषा में समझाने के लिए हिंदी एवं हिंदीतर भाषी वैज्ञानिकों को प्रोत्साहित किया। उन्होंने उपस्थित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को हिंदी में वर्ष भर कार्य करने के लिए भी उत्साहित किया।

डॉ. उज्ज्वल कुमार, प्रभागाध्यक्ष, सामाजिक, आर्थिक एवं प्रसार ने बताया कि हमें कोशिश यह करनी चाहिए कि ज्यादा से ज्यादा प्रसार कार्य हिंदी में हो, जिससे किसानों को लाभ मिले ।

श्री पुष्पनायक, मुख्य प्रशासनिक अधिकारी ने बताया कि हम सभी लोग कृषि अनुसंधान कार्य से जुड़े है। वैज्ञानिकगण चाहे वो किसी भी क्षेत्र में शोध कर रहे हों, उनको कोशिश यह करनी चाहिए वे किसानों को अपनी बातें तकनीकी ज्ञान उनकी भाषा में समझा सकें, जिससे किसानों को ज्यादा से ज्यादा लाभ पहुंचे।

इसके बाद विभिन्न प्रतियोगिताओं के विजेताओं को प्रथम, द्वितीय, तृतीय एवं सांत्वना पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र से सम्म्मानित किया गया।

डॉ. शिवानी, अध्यक्ष, हिंदी समिति ने बताया कि हिंदी विश्व में तीसरी सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा है, लेकिन यह बहुत ही दुर्भाग्य की बात है कि इसे अपने ही देश में हीन समझा

जाता है । सभी को कोशिश करनी चाहिए कि हिंदी को हर जगह उचित सम्मान मिले । उन्होंने हिंदी समिति के सदस्य श्रीमती प्रभा कुमारी, डॉ. तारकेश्वर कुमार, डॉ. रजनी कुमारी, डॉ. कीर्ति सौरभ, सुश्री मनीषा टम्टा, श्री जसप्रीत सिंह एवं हिंदी अनुवादक–सह–सदस्य सचिव श्री उमेश कुमार मिश्र को हिंदी चेतना मास–2019 के सफल आयोजन में उत्कृष्ट योगदान के लिए बधाई दी । कार्यक्रम के अंत में सुश्री मनीषा टम्टा ने उपास्थित सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों को धन्यवाद ज्ञापित किया।

हिन्दी चेतना मास–2019 की कुछ झलकियाँ

हिन्दी कार्यशाला
(16-17 सितम्बर, 2019)

हिन्दी कार्यशाला
(16-17 सितम्बर, 2019)

भा.कृ.अनु. परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
हिन्दी चेतना मास समारोह-2019
02 सितम्बर से 01 अक्टूबर
हिन्दी दिवस की हार्दिक शुभकामनाएँ

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी
की 150वीं जयंती
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

भा.कृ.अनु. परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना

भा.कृ.अनु. परिषद का पूर्वी अनुसंधान परिसर, पटना
हिन्दी चेतना मास समारोह-2019
02 सितम्बर से 01 अक्टूबर
भाकृअनुप
ICAR

भाकृअनुप
ICAR

हर कदम, हर डगर
किसानों का हमसफर
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

Agrisearch with a human touch

ICAR - RCER, PATNA